बी0ए0 प्रथम वर्ष, विषयः राजनीति विज्ञान
प्रश्नपत्र द्वितीयः स्वतन्त्रता संग्राम और भारत का संविधान

यूनिट प्रथमः भारत में राष्ट्रवाद का जन्म और विकास, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, उदारवादी और अतिवादी, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख चरणः असहयोग आन्दोंलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत छोड़ों आन्दोलन, भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947.

Unit-I

The Birth and Growth of Nationalism in India. The Indian National Congress; The Moderates and the Extremists; Landmarks of Indian National Movement : Non-Cooperation, Civil Disobedience and Quit India Movements; The Independence Act, 1947.

भारत में राष्ट्रवाद का उदय

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की तीन प्रमुख अवस्थाएंः

1. **प्रथम चरण 1885 से 1905ः** के पहले चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्येय धुंधला, अस्पष्ट तथा संदिग्ध सा था। यह आन्दोलन केवल थोड़े से शिक्षित मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग तक ही सीमित था, जो पाश्चात्य उदारवादी और अतिवादी विचारधारा से प्रेरणा लेता था।
2. **दूसरे दौर 1905–1919ः** में कांग्रेस प्रौढ़ हो गयी और इसका उद्देश्य तथा इसकी सीमाएं अधिक विस्तृत हो गयीं। यह जनता के सर्वतोन्मुखी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए प्रयत्नशील थी। राजनीतिक क्षेत्र में उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य था।
3. **अन्तिम चरण 1919–47ः** में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक विशेष भारतीय ढंग–अहिंसात्मक असहयोग, अपनाकर आन्दोलन किया और अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाने के लिए मजबूर किया।

भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के महत्त्वपूर्ण कारण

1.विदेशी प्रभुत्व का परिणामः

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब के रूप में उदित हुआ। ब्रिटिश शासन तथा उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों ने ही भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए भौतिक, नैतिक और बौद्धिक परिस्थितियाँ तैयार की। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय राष्ट्रीय जागरण अंग्रेजी औपनिवैशिक शासकों को नहीं भाया। पहले तो अंग्रेजी विद्वान शासकों ने भारत में राष्ट्रीयता के अस्तित्व को मानने से ही इन्कार कर दिया। 1883 में **श्री जे0आर0 सीले** ने भारत को, ***''केवल एक भौगोलिक इकाई''*** की संज्ञा दी थी, जिसमें एकता की कोई भावना नहीं थी। 1884 में **जान**

PKMishra

स्ट्रेची, जो एक भूतपूर्व भारतीय जानपद सेवक थे, ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्रों को बताया, *''भारत के विषय में सबसे पहली तथा प्रमुख आवश्यक जानने योग्य बात यह है कि भारत न एक है और न था।''* और अन्त में यह भी भविष्यवाणी की कि भारत कभी भी एक संयुक्त राष्ट्र नहीं होगा। जब 19वीं शताब्दी के अंत तथा 20वीं सदी के प्रथम दशक में राष्ट्रवाद उभर चुका था, तो अंग्रेजी विद्वानों ने एक नया रूख अपनाया। मान्टफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों ने भारत में अंग्रेजी ज्ञान को ही राष्ट्रीय भावना के उदय के लिए श्रेय दियझं **आर0 कुपलैंड** ने स्पष्ट कहा कि, *''भारतीय राष्ट्रवाद तो अंग्रेजी राज की ही सन्तति था।''* परन्तु कूपलैंड महोदय यह कहना भूल गये कि यह एक *''अनैच्छिक सन्तति था''* जिसे इन्होंने जन्म के समय से ही दूध पिलाने से इन्कार कर दिया और फिर उसका गला घोंटने का प्रयत्न किया। वस्तुतः भारतीय राष्ट्रवाद, कुछ अंश में समूचे संसार में उभरते हुए राष्ट्रवाद तथा आत्मनिर्णय की भावना, जो फ्रांसीसी क्रान्ति से आरंभ हुई थी, का ही भाग था। यह आंशिक रूप से भारतीय पुनर्जागरण का परिणाम, आंशिक रूप में भारत में अंग्रेजों द्वारा प्रारंभ किए गये आधुनिकीकरण का परिणाम तथा अंशिक रूप में भारत में चल रही अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों की तीव्र प्रतिक्रिया का ही परिणाम था।

इस आन्दोलन की जड़ें भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव में थी। अंग्रेजों ने अपने हितों को पूरा करने के लिए ही भारत को अधीन बनाया था। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर वे भारत का शासन चलाते थे। धीरे–धीरे भारतीयों ने अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेजों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिए, उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता रहा है। स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का यही तथ्य था।

भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समूह ने धीरे–धीरे यह देखा कि उनके हित, अंग्रेजी शासकों के हाथ में असुरक्षित हैं। **किसान** देख रहे थे कि सरकार जमीन की मालगुजारी के नाम पर उसकी उपज का एक बड़ा हिस्सा उनसे ले लेती थी। सरकार और उनकी पुलिस, उसकी अदालतें और उसके अधिकारी, सभी जमींदारों और भू–स्वामियों के समर्थक थे। **दस्तकार और शिल्पी** यह महसूस कर रहे थे कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही थी और उनके पुनर्वास के लिए कुछ नहीं कर रही थी। आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में **आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बगानों के मजदूरों** ने भी पाया कि सारी जबानी हमदर्दी के बावजूद सरकार पूँजीपतियों का, खासकर विदेशी पूँजीपतियों का ही साथ देती थी।भारतीय समाज के दूसरे समूह भी कुछ कम असंतुष्ट नहीं थे। **शिक्षित भारतीयों** का उभरता हुआ वर्ग, अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिए नए–नए प्राप्त आधुनिक ज्ञान का उपयोग कररहा था। पहले जिन लोगों ने 1857 में ब्रिटिश शासन का इस आशा मेंसमर्थन किया था कि विदेशी होने के बावजूद यह शासन देश को एक आधुनिकतथा औद्योगिक देश बनाएगा, वे अब धीरे–धीरे निराश होने लगे थे। राजनीतिक स्तर पर शिक्षित भारतीयसमुदाय को यह लगा कि पहले अंग्रेजों ने भारत को स्वशासन का मार्ग दिखानेके जो भी वादे किए थे, उन सबको वे भूल चुके थे। इसके अलावा भाषण, प्रेस तथा व्यक्ति को और अधिक

स्वतंत्रतादेने की जगह अंग्रेज, उन पर अधिकाधिक प्रतिबंध लगाते जा रहे थे। अंग्रेजअधिकारियों तथा लेखकों ने भारतीयों को जनतंत्र या स्वशासन की दृष्टि सेअयोग्य घोषित कर दिया था। संस्कृति के क्षेत्र में भी प्रशासक, उच्च शिक्षाऔर आधुनिक विचारों के प्रसार के बारे में अधिकाधिक नकारात्मक, बल्किशत्रुतापूर्ण रवैया अपना रहे थे।

उभरते हुए **भारतीय पूंजीपति वर्ग** में धीरे– धीरे राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई। लेकिन इस वर्ग ने भी अन्ततः पाया कि वह साम्राज्यवाद के कारण नुकसानउठा रहा था। सरकार की व्यापार, चुंगी कर तथा यातायात संबंधी नीतियोंके कारण इनके विकास में भारी बाधाएं आ रही थीं। सरकार और उसकी नौकरशाही विदेशीपूंजीपतियों का साथ दे रही थी, जो भारत के सीमित औद्योगिक क्षेत्र कोहथिया रहे थे। भारतीय पूंजीपतियों का विशेष विरोध विदेशी पूंजीपतियों कीसख्त प्रतियोगिता के प्रति था। इस तरह भारतीय पूँजीपतियों ने भी महसूसकिया कि उनके अपने स्वतंत्र विकास तथा साम्राज्यवाद के बीच एक अंतर्विरोधथा और यह कि एक राष्ट्रीय सरकार ही भारतीय व्यापार और उद्योगों केतीव्र विकास की परिस्थितियां तैयार कर सकती थी।**भारतीय समाज में केवल जमींदार, भूस्वामी और राजे–महाराजे ही ऐसेवर्ग थे, जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से मेल खाते थे और इसलिएवे अंत तक विदेशी शासन का साथ देते रहे।** लेकिन इन वर्गों में भी बहुतसे लोग राष्ट्रीय आन्दोलन में आए।

2. भारत में प्रशासनिक और आर्थिक एकता की स्थापनाः

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था औरवह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रीयभावना का विकास आसानी से हुआ। रेलवे, तार तथाएकीकृत डाक व्यवस्था के आरंभ ने भी देश को एकजूट बना दिया था औरजनता खासकर नेताओं के पारस्परिक सम्पर्क को इसने बढ़ावा दिया था। इससिलसिले में भी विदेशी शासन का अस्तित्व ही एकता का कारण बन गया।हालांकि यह शासन समाजिक वर्ग, जाति, धर्म या क्षेत्र का भेद किए बिनापूरी भारतीय जनता का दमन करता था। पूरे देश के लोगों ने देखा कि वेएक ही शत्रु अर्थात् ब्रिटिश शासन के हाथों पीड़ित थे। इस तरह साम्राज्यवादविरोधी संघर्ष तथा उस संघर्ष के दौरान उपजी एकजुटता की भावना ने भारतीयराष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3. पश्चिमी विचार तथा आधुनिक शिक्षा का प्रचलनः

आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रचलन से आधुनिक पाश्चात्य विचारों को अपनानेमें सहायता मिली जिससे भारतीय राजनीतिक सोच को एक नई दिशा मिली।पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार यद्यपि प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए कियागया था, परन्तु इससे नवशिक्षित वर्ग के लिए पाश्चात्य उदारवादी विचारधाराके द्वार खुल गये थे। मिल्टन, शैली, बेन्थम, मील, स्पेन्सर, रूसो, वाल्तेयरआदि विद्वानों ने भारतीय बुद्धिजीवियों में स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता तथा स्वशासनकी भावनाएँ जगा दीं, तो मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा आयरलैंड के राष्ट्रवादीनेता उनके राजनैतिक आदर्श बन गये।नए बुद्धिजीवी लोग प्रायः कनिष्ठ

प्रशासक, वकील, डॉक्टर, अध्यापक इत्यादि ही थे। इनमें से कुछ लोग इंग्लैंड में भी शिक्षा ग्रहण कर चुके थे।उन्होंने वहाँ अपनी आँखों से इन राजनीतिक संस्थाओं का प्रचलन भी देखाथा। यहाँ लौटने पर उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनके मौलिक अधिकार शून्य के बराबर हैं और वातावरण में दासता ही दासता है। विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले इन्हीं शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया। विचारों से आधुनिक बनकर इन लोगों ने विदेशी शासन की बुराइयों के अध्ययन की योग्यता भी प्राप्त कर ली। उन्हें एक आधुनिक, मजबूत, समृद्ध और एकताबद्ध भारत की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त होती रही। कालांतर में इन्हीं में से बेहतरीन तत्व राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता और संगठनकर्त्ता बने।

भारत के सभी भागों में अंग्रेजी भाषा के प्रसार और लोकप्रियता के कारण शिक्षित भारतीयों को यह एक सम्पर्क भाषा के रूप में मिल गयी थी, जिसके माध्यम से वे एक दूसरे को अपने विचारों से अवगत करा सकते थे तथा सम्मेलनों में भाग ले सकते थे।

पहले तो अंग्रेजी ने सम्पर्क भाषा के रूप में कार्य किया, लेकिन जल्द ही यह साधारण जनता में आधुनिक ज्ञान के प्रसार में बाधक भी बन गयी। यह शिक्षित नागरिक वर्गों को साधारण जनता से अलग रखने का कार्य भी करने लगी। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझा। दादाभाई नौरोजी, सैयद अहमद खान और जस्टिस रानाडे से लेकर तिलक और गाँधीजी तक सभी ने शिक्षा प्रणाली में भारतीय भाषाओं को एक बड़ी भूमिकादिए जाने की मांग पर आन्दोलन किए। वास्तव में जहाँ तक साधारण जनता का सवाल था, आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं,उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा सबसे अधिक तो भारतीय भाषाओं केलोकप्रिय प्रेस के कारण हुआ।

4. आधुनिक समाचार पत्रों का उभरनाः

भारत में अंग्रेजी राज्यका एक अन्य प्रभाव आधुनिक समाचार पत्रों का उभरना था। ये यूरोपीयलोग ही थे, जिन्होंने भारत में मुद्रणालय स्थापित किए और समाचार पत्र तथा साहित्य प्रकाशित करना शुरू किया। शनैः शनैः भारतीय भाषाओं मेंभी समाचार पत्र निकलने लगे। वह प्रमुख साधन प्रेस था जिसके द्वारा भारतीय राष्ट्रवादियों ने देशभक्ति की भावनाओं का, आधुनिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विचारों का प्रचार किया तथा एक अखिल भारतीय चेतना जगाई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी समाचार पत्र निकले। उनके पन्नों पर राष्ट्रीय नीतियों की लगातार आलोचना होती थी, भारतीय दृष्टिकोण को सामने रखा जाता था, लोगों को एकजुट होकर राष्ट्रीय कल्याण के काम करने को कहा जाता था तथा जनता के बीच स्वशासन, जनतंत्र, औद्योगीकरण आदि के विचारों को लोकप्रिय बनाया जाता था। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादी कार्यकर्त्ताओं को भी परस्पर विचारों के आदान–प्रदान करने में प्रेस ने समर्थ बनाया।

उपन्यासों, निबंधों, देशभक्तिपूर्ण काव्य आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भुमिका निभाई। बंगाल में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा रवीन्द्र नाथ टैगोर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलुणकर, तमिल में सुब्रमण्यम भारती, हिन्दी में भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र और उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे। दि इण्डियन मिरर, दि बंगाली, अमृत बाजार पत्रिका, दि बाम्बे क्रानिकल, पेट्रियाट, दि केसरी, दि हिन्दू आदि इस काल के महत्वपूर्ण समाचार पत्र थे।

5. इतिहास के शोध का प्रभाव :

अनेक भारतीय उस समय इस कदर पस्त हो चुके थे कि वे अपनी स्वशासन की क्षमता में एकदम भरोसा खो बैठे थे। इसके अलावा उस समय के अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी और लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नहीं थे, कि हिन्दू और मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहे हैं, कि उनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य रहा है और इस कारण वे लोकतंत्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं हैं।

सर विलियम जोन्स, ओनियर विलियम्ज जैसे विदेशी विद्वानों के शोध के फलस्वरूप भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा का ज्ञान होने लगा। इस क्षेत्र में विशेष रूप से कनिंघम जैसे पुरातत्वविदों की खुदाइयों ने भारत की महानता तथा गौरव का वह चित्र प्रस्तुत किया, जो रोम तथा यूनान की प्राचीन सभ्यताओं से किसी भी पक्ष में कम गौरवशाली नहीं था। इन यूरोपीय विद्वानों ने वेदों तथा उपनिषदों की साहित्यिक श्रेष्ठता और मानव मन के सुन्दर विश्लेषण के लिए उनका गुणगान किया। बहुत से यूरोपीय विद्वानों ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि भारतीय आर्य उसी मानव शाखा के लोग हैं जिससे यूरोपीय जातियाँ उपजी हैं।

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं और विद्वानों ने भी जनता में आत्म विश्वास और आत्म सम्मान जगाने के प्रयत्न किए। वे गर्व से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करते और आलोचकों का ध्यान अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य जैसे राजाओं की उपलब्धियों की ओर ले जाते। विद्वानों ने कला, स्थापत्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और राजनीति में भारत की राष्ट्रीय धरोहर की फिर से खोज करने में जो कुछ किया, उससे इन राष्ट्रवादी नेताओं को बल तथा प्रोत्साहन मिला।

6. शासकों का जातीय दंभ :

भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक गौण परन्तु महत्वपूर्ण कारण जातीय श्रेष्ठता का वह दंभ था, जो भारतीयों के प्रति अनेक अंग्रेजों के व्यवहार में पाया जाता था। इस जातीय दंभ का एक कड़वा और प्रचलित रूप तब देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेजों का पक्ष लेती थी। नन्दकुमार पर अभियोग प्रकरण, इल्बर्ट बिल विवाद, तिलक शिरोव विवाद, इसके ज्वलंत उदाहरण थे। यह जातीय दंभ जाति, धर्म, प्रांत या वर्ग का भेदभाव किए बिना तमाम भारतीयों को एक समान हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगों के क्लबों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उस डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी

जिसमें यूरोपीय यात्री जा रहे हों। इससे उनमें राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ तथा अंग्रेजों के मुकाबले वे अपने आपको एक जनगण के रूप में देखने लगे।

7. समकालीन यूरोपीय आन्दोलनों का प्रभावः

राष्ट्रवाद कीउन तेज लहरों ने, जो समकालीन समस्त यूरोप तथा दक्षिण अफ्रीका को प्रभावित कर रही थीं, भारतीय राष्ट्रवाद को भी स्फूर्ति प्रदान की। स्पेन तथा पुर्तगाल के दक्षिणी अमरीका के साम्राज्यों के खण्डहरों पर अनेक राष्ट्रीय राज्य स्थापित हो रहे थे। यूरोप में भी यूनान तथा इटली के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और आयरलैंड के स्वतंत्रता संग्राम ने विशेषतः भारतीयों के मनोभावों को अत्यधिक प्रभावित किया। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा लाला लाजपात राय ने मेजिनी तथा उसके द्वारा आरंभ किए गये तरूण इटली आन्दोलन पर तथा गैरीबाल्डी और कार्बोनेरी आन्दोलनों पर व्याख्यान दिए तथा लेख लिखे।

8. समाज तथा धार्मिक सुधार आन्दोलनों का प्रगतिशील रूप :

19वीं शताब्दी के शिक्षित भारतीयों ने पाश्चात्य दर्शन तथा विज्ञान के प्रकाश में अपने धार्मिक विश्वासों, रीति–रिवाजों तथा सामाजिक प्रथाओं का पुनः परीक्षण करना आरंभ कर दिया। इसके फलस्वरूप कई सुधारवादी संस्थाएं जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि अस्तित्व में आए। उसी प्रकार मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों की भी सुधारवादी संस्थाएं बनीं। धार्मिक क्षेत्र में इस सुधार आन्दोलनों ने अंधविश्वास, मूर्तिपूजा आदि को चुनौती दी, तो सामाजिक क्षेत्र में इन्होंने जाति प्रथा, अस्पृश्यता, बाल विवाह आदि का कड़ा प्रतिरोध किया। इन संस्थाओं का यद्यपि कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं था, फिर भी भारतीय समाज को जगाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा।

9. लार्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँः

लार्ड लिटन ने भारतमें कुछ ऐसे कार्य किए जिनसे भारत में राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ। आई.सी.एस. के भर्ती होने की आयु 21 से घटाकार 19 वर्ष कर दी गयी ताकि भारतीय शिक्षित युवक परीक्षा ही न दे सके। 1877 के भीषण अकाल के समय दिल्ली में एक भाग्यशाली दरबार लगाकर लाखों रुपए नष्ट करना एक ऐसा कार्य था जिस पर कलकत्ता के एक पत्रकार ने कहा था कि, *''नीरोवंशी बजा रहा था, जब रोम जल रहा था।''* उसके द्वारा पारित भारतीय भाषा समाचार पत्र अधिनियम तथा भारतीय शस्त्र अधिनियम से जातीय कटुता और बढ़ गयी। फलस्वरूप, भारत में अनेक राजनीतिक संस्थाएं बनीं ताकि सरकार विरोधी आन्दोलन चलाया जा सके।

10. इलबर्ट बिल का विवादः

रिपन की सरकार ने ***''जाति भेद पर आधारित न्यायिक असमर्थताएं''*** समाप्त करने का प्रयत्न किया। इलबर्ट बिल ने जनपद सेवा के भारतीय जिला तथा सत्र न्यायाधीशों को वही शक्तियां तथा अधिकार देने का प्रयत्न किया, जो कि उसके समकक्ष यूरोपीय जजों को मिले हुए थे। यूरोपीय लोगों की प्रतिक्रिया इतनी कटु थी कि वायसराय को यह अधिनियम बदलना पड़ा। भारतीयों की इस झगड़े से आँखें खुल गयीं। उन्होंने देखा कि जहाँ यूरोपीय लोगों के विशेषाधिकार का प्रश्न है उन्हें न्याय नहीं मिल सकता। दूसरे यह भी अनुभव हुआ कि संगठित आन्दोलन का क्या प्रभाव है।

1870 के दशक तक यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि भारतीय राष्ट्रवाद इतनी ताकत और गति अर्जित कर चुका है कि वह भारतीय राजनीति में एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर सके। भारतीय राष्ट्रवाद की ठोस अभिव्यक्ति दिसम्बर 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में हुई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना न तो अप्रत्याशित घटना थी और न ही कोई ऐतिहासिक दुर्घटना। 1860 और 1870 के दशक से ही भारतीयों में राजनीतिक चेतना पनपने लगी थी। कांग्रेस की स्थापना इस बढ़ती चेतना की पराकाष्ठा थी। भारतीय राजनीति में सक्रिय बुद्धिजीवी, संकीर्ण हितों के लिए आवाज उठाने के बजाय राष्ट्रीय हितों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष करने को छटपटाने लगे थे। उनके इसी प्रयास की चरम परिणति थी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन।

इस राष्ट्रीय दल के गठन के लिए जो गतिविधियाँ हो रही थीं, अंग्रेज खासकर उससे बखूबी परिचित थी। उन्हें लगता था कि असहयोग, देशद्रोह और आयरलैंड की तरह के आन्दोलनों का दौर शुरू होने वाला है। अंग्रेजी सरकार के संदेह का ठोस ऐतिहासिक आधार भी था। उस समय की राष्ट्रीय मांगें थीं आयातित सूती वस्त्रों पर शुल्क में कमी न करना, हथियार रखने का अधिकार देना, प्रेस की आजादी, सेना खर्च में कमी, प्रशासनिक सेवा का भारतीयकरण, भारतीय न्यायाधीशों के अधिकार में वृद्धि, अंग्रेज मतदाताओं के बीच इस तरह का प्रचार करना कि उसी दल को वोट दें जो भारतीयों के हितों का ख्याल रखे। अंग्रेजी सरकार को लगता था कि यदि इनकी माँगे मान ली गयी तो भारतीय जनता पर अंग्रेजी हुकूमत का शिकंजा ढीला हो जायेगा।

1875 से 1885 के दौरान जो राजनीतिक चेतना पनपी, वह मुख्यतः युवा वर्ग की देन थी। वे युवा ज्यादा लड़ाकू और राष्ट्रवादी थे। उन्हें लगता था कि पुराने संगठन दकियानूसी हो गये हैं, उनका जनाधार भी ठोस नहीं है। न उनके पास कोई ठोस कार्यक्रम है न नीतियां। यही वह कारण था कि बंगाल में ''**इंडियन एसोसिएशन**'' का गठन हुआ, मद्रास में ''**मद्रास महाजन सभा**'' तो महाराष्ट्र में ''**बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन**'' का। 1885 तक आते–आते एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन का जन्म अवश्यंभावी हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि कांग्रेस की स्थापना 1885 के पहले के कुछ वर्षों से देश में चल रहे राजनीतिक क्रियाकलाप और गतिविधियों की स्वाभाविक परिणति थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का श्रेय एक सेवानिवृत अंग्रेज प्रशासक **ए0ओ0ह्यूम** को जाता है। उन्होंने प्रमुख भारतीय नेताओं से सम्पर्क किया और उनके सहयोग से दिसम्बर **1885 में बम्बई में भारतीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन** का आयोजन किया। इसकी **अध्यक्षता डब्ल्यू0सी0 बनर्जी** ने की तथा इसमें **72 प्रतिनिधि शामिल** थे।

प्रारम्भिक कांग्रेस अधिवेशन

क्र.सं.	वर्ष	स्थान	अध्यक्ष	विशेषता
पहला	1885	बम्बई	व्योमेश चन्द्र बनर्जी	मात्र 72 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया
दूसरा	1886	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी	संख्या बढ़कर 436 हुई
तीसरा	1887	मद्रास	बी0डी0 तैयबजी	प्रथम मुस्लिम अध्यक्ष
चौथा	1888	इलाहाबाद	जार्ज यूल	प्रथम अंग्रेज अध्यक्ष

वास्तव में कांग्रेस शब्द उत्तरी अमेरिका के इतिहास से लिया गया है जिसका अर्थ है 'लोगों का समूह'। कांग्रेस का गठन संसद की तरह हुआ था जिसकी सत्र की कार्यवाही लोकतांत्रिक ढंग पर आधारित थी। राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य इस प्रकार घोषित किए गये–

''देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना, जाति, धर्म, प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, जनप्रिय मांगों का निरूपण तथा उन्हें सरकार के सामने रखना, और सबसे महत्वपूर्ण यह कि देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना।''

कहा जाता है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीयों में बढ़ रहे असंतोष की सुरक्षित निकासी के लिए एक 'सेफ्टी वॉल्ब' बनाना था। वे असंतुष्ट राष्ट्रवादी शिक्षित वर्गों तथा असंतुष्ट किसान जनता के आपसी मेल को रोकना चाहते थे। मिथक यह है कि ह्यूम और उनके साथियों ने अंग्रेज सरकार के इशारे पर ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भी थी। तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन के निर्देश, मार्गदर्शन और सलाह पर ही ह्यूम ने इस संगठन को जन्म दिया था ताकि उस समय भारतीय जनता में पनपते–बढ़ते असंतोष को हिंसा के ज्वालामुखी के रूप में फूटने से रोका जा सके और ''असंतोष की अग्नि'' को बिना किसी खतरे के बाहर निकलने के लिए सुरक्षित, सौम्य, शांतिपूर्ण और संवैधानिक निकास या 'सुरक्षा वॉल्ब' उपलब्ध कराया जा सके। यानी इस मिथक का सार संक्षेप यह है कि उस समय एक हिंसक क्रान्ति दस्तक दे रही थी, जो कांग्रेस की स्थापना के कारण टल गयी। भारतीय इतिहास के ज्यादातर लेखकों ने यह बात स्वीकार की है। इसी निष्कर्ष के कारण उदारवादी लेखक कांग्रेस की स्थापना को सही कदम बताते हैं, तो प्रगतिशील इसका इस्तेमाल यह साबित करने के लिए करते है ंकि कांग्रेस अगर साम्राज्यवाद के प्रति निष्ठावान नहीं रही तो भी कम से कम वह समझौतावादी तो रही है। जबकि दक्षिणपंथियों द्वारा इसका इस्तेमाल यह सिद्ध करने के लिए किया जाता रहा है कि कांग्रेस शुरू से ही गैर–राष्ट्रवादी रही हैं। ये सभी लोग एक बात

PK Mishra

पर सहमत है, वह यह कि कांग्रेस का जन्म जिस तरीके से हुआ, उस तरीके ने इसके बुनियादी चरित्र और भविष्य में इसके कार्यों पर निर्णायक प्रभाव डाला।

1916 में 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित अपने लेख में गरमपंथी नेता **लाला लाजपत राय** ने 'सुरक्षा वॅाल्ब' की इस परिकल्पना का इस्तेमाल कांग्रेस के नरमपंथी पक्ष पर प्रहार करने के लिए किया था। सुरक्षा वॅाल्ब पर लम्बी बहस करते हुए अपने लेख में उन्होंने कहा था कि, ***''कांग्रेस लार्ड डफरिन के दिमाग की उपज है।''*** इसके बाद आगे लिखा था कि ***''कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य राजनीतिक आजादी हासिल करने से कहीं ज्यादा यह था कि उस समय ब्रिटिश शासन पर आसन्न खतरों से उसे बचाया जा सके।''*** इसके करीब 20–25 वर्ष बाद रजनी पाम दत्त ने तो सुरक्षा वॅाल्ब के मिथक को वामपंथी विचारधारा के कच्चे माल के रूप में ही स्थापित कर दिया तथा कांग्रेस के दोहरे चरित्र पर टिप्पणी की। इसके पहले 1939 में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघ चालक एम0एस0 गोलवलकर ने भी कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता के कारण उसे गैर राष्ट्रवादी ठहराने के लिए सुरक्षा वाल्ब की इस परिकल्पना का इस्तेमाल किया था।

सुरक्षा वाल्ब की इस परिकल्पना को ऐतिहासिक साक्ष्य बना देने में सात खंडों वाली उस गोपनीय रिपोर्ट की निर्णायक भूमिका रही जिसके बारे में ह्यूम का कहना था कि 1878 की गर्मियों में शिमला में उन्होंनें इसे पढ़ा था और इसे पढ़ने के बाद उन्हें इसका पक्का यकीन हो गया कि भारत में असंतोष उबल रहा है और एक बड़ी साजिश रची जा रही है। निचले तबके के लोग ब्रिटिश शासन को हिंसा के द्वारा उखाड़ फेंकने वाले हैं। इस सात खंडों की गोपनीय रिपोर्ट की चर्चा सर्वप्रथम वेडरवर्न द्वारा लिखित ह्यूम की जीवनी में हुई थी जो 1913 में प्रकाशित हुई। इस गोपनीय रिपोर्ट की उत्पति कहाँ से हुई, यह ह्यूम तक कैसे पहुँची तथा इसके सत्य होने की क्या संभावना है आदि तथ्यों पर अभी भी शोध जारी है।

कुल मिलाकर यह ''सेफ्टी वॅाल्ब'' का सिद्धान्त सच्चाई का बहुत छोटा अंश है और यह पूरी तरह अपर्याप्त और भ्रामक है। राष्ट्रीय कांग्रेस, सबसे बढ़कर राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए कार्यरत एक पूर्णकालिक राष्ट्रीय संगठन बनाया जाय। हम पहले ही देख चुके हैं कि कुछ जबर्दस्त शक्तियों के कार्यरत होने के परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय आन्दोलन पहले से ही फैल रहा था। इस आन्दोलन के जन्म के लिए किसी एक व्यक्ति या कुछेक व्यक्तियों को श्रेय नहीं दिया जा सकता। ह्यूम के अपने उद्देश्य भी मिले जुले थे। वे सेफ्टी वॅाल्व बनाने के विचार से कहीं अधिक श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित थे। वे भारत तथा उसके गरीब किसानों से सचमुच प्यार करते थे। कुछ भी हो, राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म देने में जिन भारतीय नेताओं ने ह्यूम से सहयोग किया वे उँचे चरित्र वाले देशभक्त लोग थे। उन्होंने जानबूझकर ह्यूम की सहायता इसलिए की थी कि वे राजनीतिक कार्यकलापों के आरंभ में ही अपने प्रयासों के प्रति सरकार की शत्रुता मोल नहीं लेना चाहते थे। उन्हें आशा थी कि एक सेवानिवृत्त प्रशासक की उपस्थिति अधिकारियों की आशंकाओं का समाधान करेगी। अगर ह्यूम कांग्रेस का उपयोग

Pk Mishra

एक 'सेफ्टी—वॉल्ब' के रूप में करना चाहते थे तो कांग्रेस के आरंभिक नेताओं को आशा थी कि वे हयूम का उपयोग एक ''तड़ित चालक'' के रूप में कर सकेंगे।

इस तरह 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष आरंभ हो गया। आरंभ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि आन्दोलन का काम किया। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुँच गयी। इसके प्रतिनिधियों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक और जमींदार होते थे। **1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कादंबिनी गांगुली** ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुँचा दी गयी थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कोई एक धारा नहीं थी जिसमें राष्ट्रवाद ही नही, महिलाएं भी आगे बढ़ी। प्रांतीय सम्मेलन और स्थानीय समितियों और राष्ट्रवादी समाचार पत्र भी बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आन्दोलन के प्रमुख उद्घोषक थे। खासकर प्रेस राष्ट्रवादी विचारों तथा राष्ट्रवादी आन्दोलन को फैलाने का प्रमुख साधन बन गया था।

कांग्रेस का नरमपंथी चरण

कांग्रेस की स्थापना (1885) से लेकर 1905 तक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर उन लोगों का वर्चस्व था जिनको प्रायः नरमपंथी राष्ट्रवादी कहा जाता है। इस युग में दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दीनशा वाचा, व्योमेश चन्द्र बनर्जी और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे नेता कांग्रेस की राजनीति पर छाए हुए थे और वे लोग उदारवादी तथा परिमित राजनीति (Moderate politics)में विश्वास करते थे। *''कानून की सीमा में रहकर संवैधानिक आंदोलन तथा धीरे—धीरे व्यवस्थित ढंग से राजनीतिक प्रगति,''* इन शब्दों में नरमपंथियों की राजनीतिक पद्धति को संक्षेप में रखा जा सकता है। उनका विश्वास था कि यदि जनमत को उभारा और संगठित किया जाये और प्रार्थनापत्रों, सभाओं, प्रस्तावों तथा भाषणों के द्वारा अधिकारियों तक जनता की माँगों को पहुँचाया जाये तो वे धीरे—धीरे एक—एक करके इन माँगों को पूरा करेंगे।

इसलिए उनके राजनीतिक कार्य की दो दिशाएं थी। ***प्रथम,*** भारत की जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए **एक शक्तिशाली जनमत तैयार करना** तथा **जनता को राजनीतिक प्रश्नों पर शिक्षित तथा एकताबद्ध करना।** राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव तथा प्रार्थना पत्र भी मूलतः इसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित थे। हालांकि देखने में तो उनके स्मरण पत्र और प्रार्थना पत्र सरकार को संबोधित थे, मगर उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना था। दूसरे, आरंभिक राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करना चाहते थे ताकि जिस प्रकार के सुधार राष्ट्रवादियों द्वारा सुझाए गये थे उनको लागू किया जाये।

नरमपंथी राष्ट्रवादियों का विचार था कि ब्रिटिश जनता और संसद भारत के साथ न्याय तो करना चाहती थी, मगर उन्हें यहाँ की वास्तविक स्थिति की जानकारी नहीं थी। इसलिए भारतीय जनमत को शिक्षित करने के साथ—साथ नरमपंथी राष्ट्रवादी **ब्रिटिश जनमत को भी शिक्षित करने के प्रयास** कर

रहे थे। इस उद्देश्य से उन्होंने ब्रिटेन में जमकर प्रचार कार्य किया। भारतीय पक्ष को सामने रखने के लिए प्रमुख भारतीयों के दल को ब्रिटेन भेजा गया। 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति बनाई गयी। इस समिति ने 1890 में ''इंडिया'' नामक एक पत्रिका भी निकालनी प्रारंभ की। दादा भाई नौरोजी ने अपने जीवन तथा आय का एक बड़ा हिस्सा इंग्लैड में रहकर वहाँ की जनता में भारत की माँगों का प्रचार करने में लगा दिया।

वस्तुतः समकालीन कांग्रेसी विश्वास करते थे कि अंग्रेज न्यायप्रिय लोग हैं और वे भारत से न्याय ही करेंगे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अंग्रेजी शासन भारत के हित में है, अतएव वे लोग अंग्रेजी सरकार को शत्रु नहीं अपना मित्र समझते थे। वे आशा करते थे कि कालांतर में अंग्रेज उन्हें अपनी परम्पराओं के अनुसार स्वशासन करने में योग्य बना देंगे। वे यह समझते थे कि भारत की उन्नति में बाधा अंग्रेजी उपनिवेशवादी नीति नहीं अपितु भारतीयों का सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन है या प्रतिक्रियावादी नौकरशाही। 1866 में दादा भाई नौरोजी ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए अंग्रेजी राज्य के लोगों का सविस्तार वर्णन किया तो 1898 में अध्यक्ष पद से **आनंद मोहन बोस** ने कहा कि, ***''शिक्षित भारतीय इंग्लैड का शत्रु नहीं, अपितु उसके सम्मुख बड़े कार्य में उसका प्राकृतिक और आवश्यक सहयोगी है।''*** लेकिन बाद में जब उन्होंने ब्रिटिश शासन की बुराइयों तथा सुधार की राष्ट्रवादी माँगों को स्वीकार करने में सरकार की असफलता को समझा तो उनमें से अनेक ने ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी की कसम खाना बंद करके भारत के लिए स्वशासन की माँग उठाना प्रारंभ कर दिया। इसके अलावा उनमें से अनेक इसलिए नरमपंथी थे क्योंकि वे समझते थे कि विदेशी शासकों को खुलकर चुनौती देने का समय अभी नहीं आया है।

कार्यक्रम और कार्यकलाप

आरंभ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधी लड़ाई लड़ना अभी व्यवहारिक नहीं है। जो कुछ व्यवहारिक था वह यह था कि राष्ट्रीय भावना को जगाया तथा मजबूत किया जाये, बड़ी संख्या में भारतीय जनता को राष्ट्रवादी राजनीति की धारा में लाया जाये और राजनीतिक आन्दोलन के लिए उन्हें शिक्षित किया जाय। इस संबंध में पहला महत्वपूर्ण कार्य **राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रूचि विकसित करना** तथा **देश में जनमत का संगठन करना** था। दूसरे **राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय माँगों का निरूपण किया जाना था** ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वास्थ्य मिल सके। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि पहले पहल राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं और नेताओं में राष्ट्रीय एकता पैदा की जाय।

आरंभिक राष्ट्रीय नेता इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि भारत अभी हाल में एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुँचा है दूसरे शब्दों में भारत अभी एक नवोदित राष्ट्र था। भारत के राष्ट्रीय स्वास्थ्य को बहुत सावधानी से निखारने की जरूरत थी। राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों को क्षेत्र, जाति या धर्म के भेदों से उपर उठकर **राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित और मजबूत करने** के

PK Mishra

लिए लगातार उठकर काम करना पड़ रहा था। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक माँगों का निर्धारण इस बात को दृष्टि में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है।

1. साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचनाः

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना आरंभिक राष्ट्रवादियों का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य था। उन्होंने तत्कालीन **औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के सभी तीनों रूपों, अर्थात् व्यापार, उद्योग तथा वित्त** के द्वारा शोषण पर ध्यान दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझा कि **ब्रिटेन के आर्थिक साम्राज्यवाद का मूल तत्व भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना था।** भारत में एक **औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के मूल तत्वों** को विकसित करने के ब्रिटिश प्रयासों का उन्होंने तीखा विरोध किया। **ये तत्व थे—कच्चा माल पैदा करने वाले देश, ब्रिटिश उद्योगों में तैयार माल के लिए मंडी तथा विदेशी पूँजी के निवेश के क्षेत्र के रूप में भारत का रूपांतरण।** उन्होंने औपनिवेशिक ढाँचे पर आधारित सरकार की लगभग सभी महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों के खिलाफ एक शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा किया।

आरंभिक राष्ट्रवादी भारत की बढ़ती गरीबी तथा आर्थिक पिछड़ेपन और यहाँ तक कि आधुनिक उद्योग—धंधों तथा कृषि के विकास की असफलता को लेकर दुःखी थे। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया। **दादा भाई नौरोजी** ने 1881 में ही कहा था कि ***ब्रिटिश शासन "एक स्थायी तथा लगातार बढ़ता हुआ विदेशी आक्रमण है जो धीरे—धीरे सही मगर पूरी तरह देश को नष्ट कर रहा है।"*** भारत के परम्परागत हस्त उद्योगों को नष्ट करने तथा आधुनिक उद्योगों के विकास में बाधा डालने के लिए सरकार की नीतियों की राष्ट्रवादियों ने आलोचना की। उनमें अधिकांश ने भारतीय रेलवे, बगानों, तथा उद्योगों में विदेशी पूँजी के भारी निवेश का विरोध किया। उनका तर्क यह था कि इससे भारतीय पूँजीपतियों का उत्पीड़न होगा और भारत की अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक प्रणाली पर ब्रिटेन का दबदबा और मजबूत होगा। उन्होंने बताया कि भारत की निर्धनता को दूर करने का प्रमुख उपाय आधुनिक उद्योगों का तीव्र विकास है। वे चाहते थे कि सरकार चुंगी द्वारा संरक्षण तथा प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देकर आधुनिक उद्योगों को प्रोत्साहन दे। भारतीय उद्योग को बढ़ावा देने के लिए **उन्होंने स्वदेशी, अर्थात् भारतीय मालों के उपयोग तथा ब्रिटिश मालों के बहिष्कार के विचार को प्रोत्साहित किया।** उदाहरण के लिए 1896 में एक व्यापक स्वदेशी कार्यक्रम के अंग के रूप में पूना तथा महाराष्ट्र के दूसरे नगरों में विदेशी वस्त्रों की खुलेआम होली जलाई गयी।

राष्ट्रवादियों को शिकायत थी कि भारत की दौलत इंग्लैंड ले जाई जा रही है और उन्होंने इस दोहन को रोकने की माँग की। किसानों पर करों का बोझ कम करने के लिए उन्होंने जमीन की मालगुजारी घटाने के सवाल पर निरंतर आन्दोलन चलाया। बागान मजदूरों के काम की परिस्थितियों में सुधार के लिए राष्ट्रवादियों ने आन्दोलन किए। उन्होंने भारी करों को भारत की गरीबी का एक कारण

बताया और नमक कर खत्म करने तथा जमीन की मालगुजारी घटाने की माँग की। उन्होंने भारत सरकार के भारी फौजी खर्च की निन्दा की तथा इसे घटाने की माँग की। समय गुजरने के साथ–साथ अधिकाधिक राष्ट्रवादी इस निष्कर्ष पर पहुँचते गये कि विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा देश का आर्थिक शोषण, उसे निर्धन बनाना तथा उसके आर्थिक पिछड़ेपन की बनाए रखना, ये ऐसी बाते थीं जो विदेशी शासन के कुछ लाभकारी पहलुओं पर पानी पेफर देती थी।

2. संवैधानिक सुधारों की माँगः

राष्ट्रवादियों का आरंभ से ही यह विश्वास था कि भारत में अंततः लोकतांत्रिक स्वशासन लागू होना चाहिए। वे एक एक कदम उठाकर स्वाधीनता की मंजिल तक पहुँचना चाहते थे। वे इस बात से सावधान भी थे कि कहीं सरकार उनकी गतिविधियों को कुचल न दे। उन्होंने 1885 से 1892 तक विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की ही माँगें उठाई। उन्हीं के आन्दोलनों के दबाव से सरकार को 1892 का भारतीय परिषद कानून पास करना पड़ा। इस कानून द्वारा शाही विधायी परिषद तथा प्रांतीय परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। इनमें से कुछ सदस्यों को भारतीय अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुन सकते थे, मगर बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता। राष्ट्रवादी 1892 के सुधार से पूरी तरह असंतुष्ट थे तथा उन्होंने उसे मजाक बतलाया। उन्होंने परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा उन्हें अधिक अधिकार दिए जाने की मांग उठाई। खास तौर पर उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीयों के नियंत्रण की मांग की तथा वह नाम दिया जो इससे पहले अमरीकी जनता ने अपने स्वाधीनता युद्ध के दौरान लगाया था। वह नारा था ''प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नही'' पर साथ ही साथ वे अपने लोकतांत्रिक मांगों के आधार को व्यापक बनाने में असफल रहे, उन्होंने जनता या स्त्रियों के लिए मताधिकार की माँग नहीं की। बीसवीं सदी के आरंभ तक राष्ट्रवादी नेता और आगे बढ़ चुके थे और उन्होंने आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे स्वशासित उपनिवेशों की तर्ज पर ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहकर ही स्वशासनः स्वराज्य का दावा पेश किया। कांग्रेस के मंच से इस मांग को 1905 में गोखले और 1906 में दादा भाई नौरोजी ने उठाया।

3. प्रशासकीय सुधारों की मांगः

आरंभिक राष्ट्रवादी जो सबसे महत्वपूर्ण प्रशासकीय सुधार चाहते थे, वह यह था कि प्रशासकीय सेवाओं के उच्चतर पदों का भारतीयकरण हो। उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक आधार पर यह मांग उठाई। आर्थिक दृष्टि से उच्चतर पदों पर यूरोपीय एकाधिकार दो कारणों से हानिकारक था–

1. यूरोपीय लोगों को बहुत उँचे वेतन दिए जाते थे और इससे भारत का प्रशासन बहुत खर्चीला हो जाता था, जबकि समान योग्यता वाले भारतीयों को कम वेतन पर रखा जा सकता था।
2. यूरोपीय लोग अपने वेतन का एक बड़ा भाग भारत के बाहर भेज देते थे और उनको पेंशन भी इंग्लैंड में दिया जाता था। इससे भारत की संपत्ति का दोहन और बढ़ता था।

3. राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रवादियों का मत था कि इन सेवाओं का भारतीयकरण करने पर प्रशासन भारत की आवश्यकताओं के प्रति सजग होता। उनका मानना था कि भारतीय प्रशासकों को भारतीय समस्याओं का अधिक ज्ञान होने के कारण वे बेहतर प्रशासक हो सकते थे।

4. न्यायिक सुधार की मांगः

राष्ट्रवादियों की मांग थी कि न्यायिक अधिकारों को कार्यकारी अधिकारों से अलग किया जाय ताकि पुलिस और नौकरशाही के मनमाने अत्याचारों से जनता को कुछ सुरक्षा मिले। उन्होंने जनता के साथ पुलिस और दूसरे सरकारी अमलों के दमनकारी और निरंकुश व्यवहार के खिलाफ आन्दोलन किए। उन्होंने कानूनी प्रक्रिया में लगने वाली देरी तथा न्याय व्यवस्था के उँचे खर्च की आलोचना की।

5. नागरिक अधिकारों की रक्षा की मांगः

आरंभ में ही राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीय लोकतंत्र ही नहीं, बल्कि भाषण, प्रेस, विचार तथा संगठन की स्वतंत्रता जैसे आधुनिक नागरिक अधिकारों के प्रति भी आकर्षित थे। जब भी सरकार इन नागरिक अधिकारों को सीमित करने का प्रयास करती, वे जमकर उनका विरोध करते। 1897 में बम्बई की सरकार ने तिलक तथा दूसरे कई नेताओं तथा समाचार पत्रों के सम्पादकों को सरकार के खिलाफ असंतोष भड़काने के लिए गिरफ्तार कर लिया और उन पर मुकदमा चलाया। उनको लम्बी कैद की सजायें दी गयी। जनता की स्वतंत्रता पर इस हमले का पूरे देश में विरोध हुआ। इसी घटना ने तिलक को अखिल भारतीय नेता बना दिया।

6. सरकार की विदेश नीति की आलोचनाः

राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारत के पड़ोसी देशों के प्रति सरकार की आक्रामक विदेशी नीति का विरोध किया। उन्होंने बर्मा के अधिग्रहण, अफगानिस्तान पर हमले तथा पश्चिमोत्तर भारत की आदिवासी जनता के दमन का भी विरोध किया।

7. कल्याणकारी उपायों की मांगः

राष्ट्रवादियों ने सरकार से आग्रह किया कि वह राज्य की ओर से कल्याणकारी गतिविधियां चलाए। उन्होंने जनता में **प्राथमिक शिक्षा** के प्रसार पर बहुत अधिक जोर दिया। उन्होंने **तकनीकी और उच्च शिक्षा** की सुविधाएं बढ़ाने की भी मांग उठाई। सूदखोरों के चुंगल से किसानों को बचाने के लिए उन्होंने **कृषि बैंकों की स्थापना की मांग** की। वे चाहते थे कि सरकार **खेती का विकास तथा देश को अकाल से बचाने के लिए बड़े पैमाने पर सिंचाई योजनाएं** लागू करे। उन्होंने **चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाने की मांग** की। उन्होंने पुलिस को ईमानदार, कुशल ओर जनप्रिय बनाने के लिए पुलिस व्यवस्था में सुधार की मांगें उठाई।

PK Mishra

राष्ट्रवादियों ने उन भारतीय मजदूरों के पक्ष में भी आवाज उठाई जो गरीबी से मजबूर होकर रोजगार की तलाश में दक्षिण अफ्रीका, मलाया, मारीशस, वेस्टइंडीज या ब्रिटिश गुयाना चले जाते थे। इनमें से अधिकांश देशों में उन्हें निर्मम दमन तथा जातीय भेदभाव का सामना करना पड़ता था। यह बात दक्षिण अफ्रीका के बारे में खासतौर पर महत्वपूर्ण थी, जहाँ भारतीयों के मूलभूत मानव अधिकारों की रक्षा के लिए मोहनदास करमचन्द गांधी एक जनसंघर्ष चला रहे थे।

कांग्रेस के प्रति अधिकारी वर्ग का स्वरूपः

आरंभ से ही ब्रिटिश अधिकारी उभरते हुए राष्ट्रवादी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति शंकालु थे। वायसराय डफरिन ने ह्यूम को यह सुझाव दिया कि कांग्रेस राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक मामलों को देखे और इस तरह उसने राष्ट्रीय आन्दोलन को दिशा भ्रष्ट करना चाहा। डफरिन ने 1886 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के प्रतिनिधियों को 'उद्यान भोज' दिया था जिसमें स्पष्ट किया गया था कि यह निमन्त्रण कांग्रेस के प्रतिनिधियों को नहीं, अपितु कलकत्ता आए हुए दर्शकों को है। 1887 के बाद सरकार का रूख कठोर होता चला गया तथा ब्रिटिश अधिकारी खुलकर राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निन्दा करने लगे। डफरिन से लेकर नीचे तक के सभी ब्रिटिश अधिकारी राष्ट्रवादी नेताओं को 'बेवफा बाबू', 'राजद्रोही ब्राह्मण' तथा 'हिंसक खलनायक' कहने लगे। कांग्रेस को ''राजद्रोह का कारखाना'' कहा जाने लगा। **डफरिन** ने कांग्रेस के राष्ट्रीय चरित्र को चुनौती दी और कहा कि यह तो केवल एक **''सूक्ष्मदर्शी अल्पसंख्या''** का प्रतिनिधित्व करती है और कांगेस की मांगों को अज्ञान में छलांग की संज्ञा दी। 1890 में सरकारी सेवकों को कांग्रेस में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं रही।

लार्ड कर्जन ने 1890 में विदेश सचिव को बतलाया कि, **''कांग्रेस का महल भरभरा रहा है और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्वाकांक्षा यह है कि मैं शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूं।''** भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन के लिए बड़ा खतरा है, यह महसूस करके अंग्रेज अधिकारियों ने ''बांटो और राज करो'' के साथ–साथ 'डांट फटकार' की नीति भी अपनाई। उन्होंने सैयद अहमद खान, बनारस के राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द', हैदराबाद के निजाम, सर दिनाश मानकजी तथा दूसरे ब्रिटिश समर्थक व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया कि वे कांग्रेस के खिलाफ आन्दोलन चलाएं। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में भी फूट डालने की कोशिश की। **एल्गिन** ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि ***''भारतवर्ष तलवार के बल पर जीता गया था और तलवार के बल पर ही उसे ब्रितानी कब्जे में रखा जायेगा।''*** सरकार शिक्षा और प्रेस पर अंकुश लगाकर राष्ट्रीयता की भावना कुचलने का प्रयास करती रही, परन्तु प्रत्येक दमनात्मक कार्यवाही ने राष्ट्रीयता की भावना विकसित ही की।

आलोचनात्मक मूल्यांकन :

कुछ आलोचकों का विचार है कि राष्ट्रवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस को आरंभिक चरण में अधिक सफलता नहीं मिली। जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आन्दोलन छेड़े उनमें से सरकार ने

बहुत थोड़े सुधार ही लागू किए। यद्यपि इस आलोचना में बहुत कुछ सच्चाई है फिर भी आरंभिक राष्ट्रीय आन्दोलन को असफल घोषित करना भी ठीक नहीं है। इनकी प्रमुख उपलब्धियां निम्न हैः

1. यह एक व्यापक राष्ट्रीय जागृति लाने तथा जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र का सदस्य होने की भावना जगाने में सफल रहा।

2. इसने भारतीय जनता को उनके साझे राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों से जुड़े होने तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक साझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जागरूक किया और इस प्रकार उनको एक राष्ट्र में एकताबद्ध किया।

3. इसने जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया, उनमें जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रताओं, धर्म निरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, उनमें आधुनिक दृष्टिकोण जगाया तथा ब्रिटिश शासन की बुराइयों को उनके सामने रखा।

4. भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सही चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अग्रणी भूमिका निभाई। साम्राज्यवाद की शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय आलोचना, ब्रिटिश शासन के खिलाफ बाद में हुए सक्रिय जनसंघर्ष के दौरान राष्ट्रवादी आन्दोलन का एक प्रमुख अस्त्र बन गयी।

5. इसने यह राजनीतिक सत्य सामने रखा कि भारत का शासन भारतीयों के हित में चलना चाहिए। इसने राष्ट्रवाद के प्रश्न को भारतीय जीवन का एक प्रमुख प्रश्न बना दिया। आरंभिक आन्दोलन की कमजोरियों को तो बाद की पीढ़ियों ने दूर कर दिया और उसकी उपलब्धियाँ आगे के वर्षो में एक और जोरदार राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बन गयी। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनाई जिस पर राष्ट्रीय आन्दोलन आगे और भी विकसित हुआ। अतः आरंभिक राष्ट्रवादियों को आधुनिक भारत के निर्माताओं में उँचा स्थान मिलना चाहिए।

बंगाल विभाजन तथा भारतीय प्रतिरोध

बंग–भंग आन्दोलन

ब्रिटिश शासन का सबसे घृणित कार्य बंगाल का दो भागों में विभाजन करना था। 20 जुलाई, 1905 को लार्ड कर्जन ने एक आज्ञा जारी करके बंगाल को दो भागों में बांट दिया। उस समय बंगाल प्रांत में आधुनिक बांग्लादेश, प. बंगाल, बिहार और उड़ीसा सम्मिलित थे। इसका क्षेत्रफल 1,89,000 वर्गमील और जनसंख्या 8 करोड़ थी, जिसमें बिहार और उड़ीसा की जनसंख्या 2 करोड़ 10 लाख थी। बंटवारे के बाद पूर्वी बंगाल और असम का एक नया प्रांत बनाया गया जिसमें राजशाही, चटगांव और ढाका के तीन डिवीजन सम्मिलित थे। इसका क्षेत्रफल 1,06,540 वर्ग मील और जनसंख्या 3 करोड़ 10 थी, जिसमें से 1 करोड़ 80 लाख मुसलमान थे और 1 करोड़ 20 लाख हिन्दू। इस प्रांत का मुख्य कार्यालय ढाका में था और यह एक लेफ्टिनेन्ट गर्वनर के अधीन था। दूसरी ओर पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा थे जिनका क्षेत्रफल 1,41,580 वर्गमील था और जिनकी जनसंख्या 5 करोड़ 40 लाख थी, जिसमें 4 करोड़ 20 लाख हिन्दू और केवल 90 लाख मुसलमान थे। इसमें बंगाली अल्पसंख्यक थे।

बंगाल के विभाजन के पीछे स्थित कारणों को लेकर व्यापक विवाद रहा है। इतिहासकारों ने इसके अलग–अलग कारण बताये हैं–

1. प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण सेः

सरकारी तौर पर यह दावा किया गया था कि बंगाल का विभाजन प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर किया गया। बंगाल का प्रांत काफी बड़ा था और समय–समय पर इसे छोटा करने के सुझाव दिए जाते रहे थे। लेकिन सरकार या ब्रिटिश शासन के उद्देश्य कुछ और ही थे। अगर सिर्फ प्रशासनिक सुविधा की बात होती तो बंगाल से गैर–बंगाली भाषी बिहार और उड़ीसा को भी अलग किया जा सकता था, लेकिन इस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। कर्जन ने कहा था कि, बंगाल से बाह्य घटकों को अलग करने से तो बंगाली तत्वों की स्थिति और सुदृढ़ हो जायेगी और ठीक वही स्थिति पैदा हो जायेगी जिससे हम बचना चाहते हैं। हमारा प्रस्ताव राजनीतिक रूप से लाभदायक है जिसका प्रमाण है–काँग्रेस का इसे नापसंद करना। वस्तुतः विभाजन का कारण राजनीतिक था।

2. फूट डालो और राज करो की नीतिः

राष्ट्रवादी इतिहासकारों की धारणा है कि बंगाल विभाजन का कदम जान–बुझकर, 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अर्न्तगत उठाया गया था। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में भारत में राष्ट्रीय चेतना तेजी से विकसित हो रही थी। भारतीय राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र था – बंगाल। अंग्रेजों ने इसी राष्ट्रीय चेतना पर आघात करने के उद्देश्य से ही बंगाल के बंटवारे का निर्णय लिया। **लॉर्ड कर्जन** के अनुसार–*''अंग्रेजी हुकूमत का यह प्रयास कलकत्ता को सिंहासन से हटाना, बंगाली आबादी का बंटवारा करना, एक ऐसे केन्द्र को समाप्त करना था जहाँ से सारे देश में कांग्रेस पार्टी का संचालन होता था तथा साजिशें रची जाती थीं।''* यह एक महत्वपूर्ण राजनीतिक चाल थी जिसका उद्देश्य था पश्चिमी और पूर्वी बंगाल के हिन्दू राजनीतिज्ञों के बीच दरार डालना। **रिजले** ने कहा था,*''अविभाजित बंगाल एक बड़ी ताकत है। विभाजित होने से यह कमजोर हो जायेगी और हमारा मुख्य उद्देश्य बंगाल का बंटवारा करना है जिससे हमारे दुश्मन बंट जायें, कमजोर पड़ जायें।''*

3. सांप्रदायिक भेद का बढ़ावा देनाः

विभाजन का एक और उद्देश्य जान–बूझकर हिन्दू–मुस्लिम तनावों को बढ़ावा देना था। राष्ट्रवादियों ने यह आरोप लगाया कि बंगाल विभाजन का उद्देश्य बंगाल को धार्मिक तौर पर बांटना था, क्योंकि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों और पश्चिमी बंगाल में हिन्दुओं का बहुमत था। इस आक्षेप को कर्जन की उस टिप्पणी से बल मिलता है,जो उसने ढाका में भाषण करते हुए की थी–बंगाली मुसलमानों को एकता का ऐसा अवसर दिया जा रहा है जो मुसलमान सूबेदारों और बादशाहों के समय से उन्हें नसीब नहीं हुआ था।

4. बंगालियों को अल्पसंख्यक बनानाः

बंगाल विभाजन का सिर्फ यह उद्देश्य नहीं था कि बंगालवासियों को दो प्रशासनिक हिस्सों में बांटकर उनके प्रभाव को कम किया जाये। अंग्रेजी हुकूमत का मूल मकसद बंगाल में बंगालियों की आबादी कम करके उन्हें अल्पसंख्यक बना देना था। मूल बंगाल में 1 करोड़ 70 लाख बंगाली और 3 करोड़ 70 लाख उड़ीया व हिन्दीभाषी लोगों को रखने की योजना थी। इस प्रकार बंगाल विभाजन की योजना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर एक सुनियोजित हमला थी। भारतीय राष्ट्रवदियों ने इसका कड़ा विरोध किया और अंततः 1911 में वे इसे वापस करवाने में सफल हुए।

बंगाल के विभाजन परिणाम

1. तीव्र राष्ट्रीय प्रतिरोध का जन्मः बंगाल के विभाजन को एक राष्ट्रीय अपमान के तौर पर लिया गया और विरोध प्रदर्शनों की बाढ़ आगयी। शुरुआती दौर में विरोध प्रदर्शन का सहारा लिया गया। विभाजन के दिन को शोक दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गयी। कलकत्ता में एक व्यापक विरोध प्रदर्शन का आयोजन हुआ और प्रतिनिधि आन्दोलन को फैलाने के लिए पूरे देश में फैल गये। हिन्दू–मुस्लिम एकता को दर्शाने के लिए हिन्दू–मुसलमानों ने एक–दूसरे की कलाइयों पर राखियां बांधीं।

2. स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन का जन्मः बंग–भंग के विरोध में **'स्वदेशी'** और **'बहिष्कार'** आन्दोलन का जन्म हुआ। बंगाल के नेताओं को लगा कि केवल प्रदर्शनों, सार्वजनिक सभाओं और प्रस्तावों से शासकों पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। इसके लिए और सकारात्मक उपाय करने होंगे, जिनसे जनता की भावनाओं की तीव्रता का अच्छी तरह पता चले। इसका परिणाम था 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार'।

पूरे बंगाल में जनसभाएं की गयीं, जिनमें **स्वदेशी अर्थात भारतीय वस्तुओं के उपयोग तथा ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार** के निर्णय किये गये। अनेक जगहों पर विदेशी कपड़ों की होली जलायी गयी और विदेशी कपड़े बेचने वाली दुकानों पर धरने दिए गये। **स्वदेशी आन्दोलन पर्याप्त सफल रहा। इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष था आत्मनिर्भरता पर दिया जाने वाला जोर। आत्मनिर्भरता का मतलब था राष्ट्र की गरिमा, सम्मान और आत्म–विश्वास की घोषणा। आर्थिक क्षेत्र में इसका अर्थ देशी उद्योग एवं अन्य उद्यमों को बढ़ावा देना था।** अनेक कपड़ा मिलें, साबुन और दियासलाई के कारखाने, हैण्डलूम, राष्ट्रीय बैंक और बीमा कंपनियां खुलीं।

3. सांस्कृतिक प्रगतिः बंगाल विभाजन और उससे उभरे स्वदेशी आन्दोलन का एक परिणाम सांस्कृतिक प्रगति के रूप में सामने आया। राष्ट्रवादी काव्य, गद्य और पत्रकारिता का विकास हुआ।

4. राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसारः साहित्यिक, तकनीकी और शारीरिक शिक्षा देने के लिए राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की। उनका मानना था कि तत्कालीन शिक्षा प्रणाली अपर्याप्त और राष्ट्रवाद से विमुख करने वाली है। **15 अगस्त, 1906** को **एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद** की स्थापना की गयी। **कलकत्ता में एक राष्ट्रीय कॉलेज** आरंभ हुआ, जिसके **प्रधानाचार्य अरविंद घोष** थे।

5. राष्ट्रीय आन्दोलन में छात्रों और स्त्रियों का बड़े पैमाने पर प्रवेशः स्वदेशी आन्दोलन में एक प्रमुख भूमिका बंगाल के युवकों ने निभायी। उन्होंने स्वदेशी का प्रचार और प्रसार किया। विदेशी वस्त्रों की होली जलायी। छात्रों का व्यापक दमन भी किया गया, परंतु उन्होंने झुकने से इंकार कर दिया। स्वदेशी आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता थी **स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी।** शहरी मध्यम वर्ग की सदियों से घरों में कैद महिलाएं जुलूसों और धरनों में शामिल हुईं। इसके बाद से राष्ट्रवादी आन्दोलन में वे बराबर सक्रिय रहीं।

6. उग्र राष्ट्रवाद का विकासः बंग विभाजन और उससे उपजे विरोध आन्दोलन का स्वाभाविक परिणाम उग्र राष्ट्रवाद के विकास के तौर पर सामने आया। नरमपंथी आन्दोलन का कोई परिणाम सामने नहीं आया था, अतः आन्दोलन धीरे–धीरे उग्रपंथी नेताओं के हाथ में आ गया। इन्होंने स्वदेशी और बहिष्कार के अलावा **'निष्क्रिय प्रतिरोध'** का आह्वान भी किया। उन्होंने जनता से आग्रह किया कि वे सरकार के साथ सहयोग न करें और सरकारी सेवाओं, अदालतों, विद्यालयों, विधानमंडलों का बहिष्कार करें। उन्होंने आन्दोलन को जन–आन्दोलन बनाना चाहा और **विदेशी शासन से मुक्ति का नारा** दिया। **अरविंद घोष** ने खुलकर यह घोषणा की कि, *'राजनैतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राणवायु है।'* इस तरह **बंगाल विभाजन का प्रश्न गौण हो गया और भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न भारतीय राजनीति का केन्द्रीय प्रश्न बन गया। उग्र राष्ट्रवादियों** ने **आत्म बलिदान का आह्वान** किया और घोषणा की कि इसके बिना कोई भी महान उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता था। फिर भी उग्र–राष्ट्रवादी जनता को सकारात्मक नेतृत्व देने में विफल रहे।

7. क्रान्तिकारी आतंकवाद का विकासः सरकार का दमन और साथ में जनता को कुशल नेतृत्व देने में नेताओं की असफलता के कारण उपजी कुंठा जैसी बातों ने क्रान्तिकारी आतंकवाद को जन्म दिया। युवकों ने देखा कि शांतिपूर्ण प्रतिरोध और राजनीतिक कार्यवाही के सारे रास्ते बन्द हैं, तो हताश होकर उन्होंने व्यक्तिगत बहादुरी के कार्यों और बम की राजनीति का सहारा लिया। जैसा कि बारीसाल सम्मेलन के बाद समाचार पत्र **युगांतर** ने 1906 में लिखा कि– *'उत्पीड़न के इस अभिशाप को रोकने के लिए भारत के तीस करोड़ लोगों को अपने साठ करोड़ हाथ ऊपर उठाने होंगे। ताकत का सामना ताकत से करना होगा।'* 1907 में बंगाल के लेफ्टिनेंट गर्वनर को जान से मारने की कोशिश की गयी। अप्रैल 1908 में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर के जज को मारने की कोशिश की। आंतकवादी युवकों ने कई गुप्त संगठन भी बनाये, लेकिन यह आन्दोलन धीरे–धीरे ठंडा पड़ गया।

8. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विभाजनः बंग–भंग विरोधी आन्दोलन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर एक गहरा प्रभाव छोड़ा। नरमपंथी और गरमपंथी राष्ट्रवादियों के बीच जमकर सार्वजनिक बहसें हुईं और मतभेद उभरे। **गरमपंथी स्वदेशी और बहिष्कार को बंगाल से बाहर पूरे देश में फैलाने तथा औपनिवेशिक सरकार के साथ किसी भी रूप में जुड़ने का बहिष्कार करना चाहते थे। नरमपंथी बहिष्कार को सिर्फ बंगाल तक और वहां भी केवल विदेशी मालों तक सीमित रखना चाहते थे।** समय के साथ उनके मतभेद बढ़ते ही गये और अंत में 1907 में सूरत अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये।

लेकिन अंततः इस विभाजन से लाभ किसी भी दल को नहीं हुआ। नरमपंथियों का राष्ट्रवादियों की नयी पीढ़ी से सम्पर्क टूट गया। इस प्रकार बंग विभाजन और उससे उपजे संघर्ष से देश के बड़े तबके में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हुआ, औपनिवेशिक विचारधारा को धक्का पहुंचा और सांस्कृतिक प्रगति हुई। इस आन्दोलन ने जनमत तैयार करने के कई नये तरीके ईजाद किये। यही संघर्ष भावी राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव बना तथा विभाजन ने भावी संघर्ष का बीज बो दिया।

उग्र राष्ट्रवाद के विकास के लिए उत्तरदायी कारण :

1. ब्रिटिश शासन के सही चरित्र की पहचान: नरमपंथी राष्ट्रवादियों की राजनीति इस विश्वास पर आधारित थी कि ब्रिटिश शासन को अंदर से सुधारा जा सकता है। लेकिन राजनैतिक और आर्थिक प्रश्नों से संबंधित ज्ञान जब फैला तो धीरे–धीरे यह विश्वास टूट गया। आरंभिक काल के नेताओं ने अपने प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि **अंग्रेजी राज तथा उसकी नीतियाँ ही भारत में दरिद्रता के मूल कारण** हैं। राजनीतिक रूप से चेतन भारतीयों को विश्वास था कि **ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना, अर्थात् भारत की संपत्ति से इंग्लैंड को समृद्ध बनाना है।**

उन्होंने महसूस किया कि जब तक भारतीयों द्वारा नियंत्रित और संचालित कोई सरकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह नहीं ले लेती, आर्थिक क्षेत्र में भारत शायद ही कुछ प्रगति कर सके। **भारत में 1896 और 1900 के बीच भयानक अकाल** आए जिसमें **90 लाख से उपर लोग मरे थे**, वे जनता की दृष्टि में विदेशी शासन के आर्थिक दुष्परिणामों के जीते जागते प्रतीक थे।

1892 और 1905 के बीच जो राजनीतिक घटनाएँ घटीं, उन्होंने भी राष्ट्रवादियों को काफी निराश किया तथा उन्हें और भी उग्र राजनीति के बारेमें सोचने को बाध्य किया। **1892 का ''भारतीय परिषद कानून'' घोर निराशा का कारण सिद्ध हुआ।** दूसरी ओर जनता को जो थोड़े से राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे, उन पर प्रतिबंध लगाने के प्रयास किए गये। **1898 में एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार ''विदेशी शासन के प्रति असंतोष की भावना'' फैलाने को अपराध घोषित किया गया।** 1899 में कलकत्ता नगर निगम में भारतीय सदस्यों की संख्या घटा दी गयी। 1904 में इण्डियन ऑफिशियल सेक्रेट एक्ट बनाकर प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया गया। लार्ड कर्जन के कांग्रेस विरोधी दृष्टिकोण ने अधिकाधिक लोगों को विश्वास दिलाया कि भारत में ब्रिटिश शासन के रहते राजनीतिक और आर्थिक प्रगति की आशा करना व्यर्थ है।

2. आत्म विश्वास का संदेश: 19वीं सदी के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्म विश्वास और आत्म सम्मान बहुत बढ़ा था। उन्हें अपना शासन स्वयं कर पाने तथा देश का विकास कर सकने की अपनी क्षमता में विश्वास हो चुका था। तिलक, अरविंद घोष और विपिन चन्द्र पाल जैसे नेताओं ने राष्ट्रवादियों को आत्मविश्वास का संदेश दिया और उनसे आग्रह किया कि वे भारतीय जनता के चरित्र और क्षमताओं पर विश्वास करें। उन्होंने जनता को बताया कि उनकी समस्या का हल उनके हाथ में है और इसके लिए उन्हें निर्भय और बलवान होना चाहिए।

3. शिक्षा और बेरोजगारी में वृद्धिः 19वीं सदी के अंत तक शिक्षित भारतीयों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि हुई। इसका एक बड़ा भाग प्रशासन में बहुत ही कम वेतन पर कार्य कर रहा था और दूसरे बहुत से लोग बेरोजगार घूम रहे थे। अपनी आर्थिक स्थिति के कारण ये लोग ब्रिटिश सरकार के चरित्र को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगे। उनमें से अनेक उग्र राष्ट्रवादी नीतियों की ओर आकर्षित हुए। शिक्षित भारतीयों की संख्या जितनी बढ़ी, उतना ही लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और आमूल परिवर्तन के पश्चिमी विचारों का प्रभाव भी फैला। ये शिक्षित भारतीय उग्र राष्ट्रवाद के बेहतरीन प्रचारक और अनुयायी सिद्ध हुए।

4. कांग्रेस की उपलब्धियों से असंतोषः कांग्रेस के पहले के 15–20 वर्षों की उपलब्धियों से तरूण लोग संतुष्ट नहीं थे। उनका अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा बराबरी की भावना पर कोई विश्वास नहीं रह गया था। वे लोग शांतिपूर्ण और संवैधानिक ढंगों के आलोचक बन गये थे और समझते थे कि याचना, प्रार्थना तथा प्रतिवाद करने की नीति से कुछ नहीं मिलने वाला। उन्होंने साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए यूरोपीय तरीके अपनाने पर बल दिया।

5. कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ : कर्जन के भारत का 7 वर्ष का शासन शिष्टमंडलों, भूलों और आयोगों के लिए प्रसिद्ध था, जिसकी भारतीयों में कड़ी प्रतिक्रिया हुई। कर्जन ने भारत को कभी एक राष्ट्र नहीं माना। वह भारत में ब्रिटिश सत्ता की जड़ें मजबूत करने आया था। वह कांग्रेस और राष्ट्रीयता की भावना का प्रबल दुश्मन था। उसने भारतीयों को संवैधानिक और प्रशासनिक अधिकार देने के बदले सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयास किया।

उसने भारतीयों को उच्च सरकारी पदों के अयोग्य करार दिया, भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट द्वारा उच्च शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण और अधिक बढ़ा दिया तथा ऑफिशियल सेक्रेट एक्ट द्वारा समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लाद दिया। उसका सबसे विवादास्पद कार्य बंगाल विभाजन था। यह योजना सिर्फ राजनीतिक आधार पर तैयार की गयी थी, इसका कोई वैधानिक या सैद्धान्तिक आधार नहीं था। इसका मुख्य उद्देश्य बंगाल में राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना था। इस घटना ने बंगाल में उग्रवादी और सरकार विरोधी गतिविधियां तेजकर दीं। लार्ड कर्जन की वैदेशिक नीतियां भी असंतोष को बढ़ावा मिला।

6. अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमः कुछ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी भारत में उग्र–राष्ट्रवाद के विकास को प्रोत्साहित किया। 1858में **'मैईजी पुनर्स्थापना'** के बाद आधुनिक जापान के उदय ने दिखा दिया कि एक पिछड़ा हुआ एशियाई देश भी पश्चिमी सहायता के बिना अपना विकास कर सकता है। कुछ ही दशकों में जापान एक औद्योगिक एवं सैनिक शक्ति बन गया। **1896** में **इथियोपिया द्वारा इटली की हार** तथा **1905** में **जापान के हाथों रूस** की पराजय ने यूरोपीय श्रेष्ठता के भ्रम को तोड़ दिया। एशिया के एक छोटे से देश के हाथों यूरोप की सबसे बड़ी सैन्य शक्ति की पराजय ने लोगों में नए उत्साह एवं आत्मविश्वास का संचार किया।

7. उग्र विचारों से प्रेरित नेताओं का प्रादुर्भावः राष्ट्रीय आन्दोलन के लगभग आरंभ से ही उग्र–राष्ट्रवादी विचारधारा विकसित हो रही थी। बंगाल में राज नारायण बोस, अश्विनी कुमार दत्त और महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री चिपुलणकर उग्र विचारधारा का प्रसार कर रहे थे। इसे बाल गंगाधार तिलक लोकमान्य ने और आगे बढ़ाया। उन्होंने महाराष्ट्र में अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा छत्रपति शिवाजी को आदर्श बनाकर अंग्रेजों के विरूद्ध विरोध की प्रक्रिया तीव्र कर दी। इस कार्य में उनके दो समाचार पत्रों –''मराठा'' (अंग्रेजी में) तथा ''केसरी'' (मराठी में) ने अत्यधिक योगदान दिया। 1893 में उन्होंने ''गणपति उत्सव'' का उपयोग राष्ट्रवादी विचारों के प्रसार के लिए किया। इसी तरह 1895 में उन्होंने ''शिवाजी उत्सव'' का आयोजन आरंभ किया। इसका उद्देश्य महाराष्ट्रीय युवकों के आगे अनुकरण के लिए शिवाजी का उदाहरण पेश कर उनमें राष्ट्रवाद की भावना पैदा करना था। जब सरकार के खिलाफ घृणा और असंतोष भड़काने के आरोप में सरकार ने उन्हें 1897 में गिरफ्तार किया, तो उन्होंने उन्होंने सरकार से क्षमा मानने से इंकार कर दिया और उन्हें 18 महीने कैद की सजा हुई। 20वीं सदी के आरंभ में उग्र राष्ट्रवादियों को एक अनुकूल राजनीतिक वातावरण प्राप्त हुआ। तिलक के अलावा उग्र राष्ट्रवाद के दूसरे महत्वपूर्ण नेता विपिनचन्द्र पाल, अरविंद घोष और लाला लाजपत राय थे।

उग्रवादी दल के उद्देश्य तथा कार्यक्रम :उनका मत था कि भारतीयों को मुक्ति स्वयं अपने प्रयासों से प्राप्त करनी होगी। उन्होंने घोषणा की कि इस कार्य के लिए बड़े–बड़े बलिदान करने होंगे और तकलीफें सहनी होंगी। उनके भाषण, लेख और राजनीतिक कार्य दिलेरी और आत्मविश्वास से भरपूर थे और अपने देश की भलाई के लिए किसी भी व्यक्तिगत बलिदान को कम समझते थे।

उन्होंने नरमपंथियों की इस मान्यता को कि भारत अंग्रेजों के ''कृपापूर्ण मागदर्शन और नियंत्रण'' में ही प्रगति कर सकता है, मानने से इंकार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि ''राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य स्वराज्य या स्वाधीनता है। यह स्मरण रहे कि इन राष्ट्रवादियों के लिए स्वराज्य का अर्थ ''विदेशी नियंत्रण से पूर्ण स्वतंत्रता था, जिसमें राष्ट्र की नीतियों तथा प्रबन्ध में पूर्णतया स्वतंत्रता हो।'' उदारवादी दल के लिए स्वराज्य का अर्थ, साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक स्वशासन था।

उन्हें जनता की शक्ति में असीम विश्वास था और उनकी योजना जनता की कार्यवाही के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की थी। इसलिए उन्होंने जनता के बीच राजनीतिक कार्य पर और जनता की सीधी राजनीतिक कार्यवाही पर जोर दिया। उग्रवादियों के कार्यक्रमों में विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल के अंगीकार के अलावा राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर जोर दिया गया था। उनका मानना था कि विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी माल के प्रयोग से अंग्रेजों को वित्तीय हानि होगी और बंगाल विभाजन रद्द करने के लिए सरकार पर दबाव डाला जा सकेगा।

कांग्रेस का विभाजन

भारतीय राजनीति में उग्रवाद का विकास दो रूपों में हुआ– कांग्रेस के भीतर उग्रवाद का उदय और कांग्रेस पर इसका अधिपत्य तथा आतंकवादी एवं क्रान्तिकारी दलों का उदय।

कांग्रेस की नरमपंथी नीतियों के खिलाफ 1895 से ही असंतोष व्यक्त किया जाने लगा था। बनारस कांग्रेस में प्रिंस आफ वेल्स जार्ज पंचम के भारत आगमन के समय उनके स्वागत के प्रश्न को लाजपत राय और तिलक ने कड़ी चुनौती दी थी। तिलक ने बंग विभाजन के विरूद्ध सत्याग्रह करने का आग्रह किया तथा इसे पूर्णतः वैधक और न्यायसंगत बताया। 1906 के कलकत्ता अधिवेशन के समय दोनों दलों में दरार और बढ़ गयी। **'बहिष्कार' के अस्त्र को पूरे भारत में लागू किया जाये या सिर्फ बंगाल में, उस प्रश्न पर दोनों दल उलझ पड़े।** सूरत कांग्रेस अधिवेशन; 1907 में कांग्रेस स्पष्टतः दो दलों, नरमपंथी और गरमपंथी अथवा उदार तथा उग्रवादी में विभक्त हो गयी। दोनों दलों ने अलग–अलग रास्ते अख्तियार कर लिए। **उदारवादियों ने ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग और समझौते का रास्ता अपनाया, जबकि उग्रवादियों ने संघर्ष का रास्ता चुना।** धीरे–धीरे कांग्रेस पर से उदारवादियों का प्रभाव समाप्त होता चला गया और उनकी जगह उग्रवादियों ने ले ली। बाद की घटनाओं और सरकार के कार्यों से उदारवादी भी क्षुब्ध हो गये। उन लोगों ने भी सरकार के साथ सहयोग करने की निरर्थकता को समझ लिया। फलतः 1916 ई. में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में दोनो दलों में पुनः एकता कायम हो गयी।

उग्रवाद का मूल्यांकनः

उग्रवादी विचार और राजनीति के मूल्यांकन में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह एक सुसंगठित राजनीतिक दर्शन नहीं था। इसके समर्थकों में सक्रिय क्रान्तिकारी से लेकर, गुप्त समर्थक तक सम्मिलित थे। इसी प्रकार इस दर्शन के सभी प्रमुख नेताः अरविन्द, तिलक, पाल तथा लाजपत राय अपने राजनीतिक आदर्शों तथा कार्यप्रणाली में भिन्न थे। यही नहीं नेताओं के अपने विचार भी समयानुसार बदलते रहे। उदाहरण के रूप में तिलक का स्वराज्य एक प्रकार का ''स्वशासन'' था, जबकि अरविन्द का स्वराज्य अंग्रेजों के नियंत्रण से पूर्णतया स्वतंत्र था।

उग्रवादी नेता प्रजातंत्र, संविधान और प्रगति की बात करते थे और यह भी चाहते थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन का सामाजिक आधार अधिक बड़ा हो जाये। ये नगरवासी प्रायः निम्न मध्यम वर्गों के लोग थे, जो चाहते थे कि कांग्रेस का सन्देश जनता तक पहुँचे। इन लोगों ने अपने विचारों को जनता में प्रसारित करने के लिए भरसक प्रयत्न किए। ये लोग भारत में अंग्रेजों की भूमिका को भलीभांति समझते थे और वे चाहते थे कि भारतीयों को भारत के प्रशासन में अधिक भाग मिले तथा अंग्रेजों शोषण बन्द हो। वे यह भी अनुभव करते थे कि अंग्रेजों का भारत छोड़ना किसी न किसी प्रकार की प्रत्यक्ष क्रिया के और दबाव के बिना संभव नहीं है। अतएव सहयोग के स्थान पर असहयोग और सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों के विरूद्ध प्रतिरोध की नीति अपनाई। इन लोगों ने जनता को ''असहयोग, अहिंसात्मक प्रतिरोध, सामूहिक आन्दोलन, आत्मनिर्भरता और दुःख'' सहने का पाठ पढ़ाया। इन लोगों ने देशभक्ति को विद्या विनोद से परिवर्तित कर ''देश सेवा तथा दुःख सहना'' बना दिया।

इस नीति का लाभ भी हुआ। 1911 में बंगाल का विभाजन रद्द करदिया गया। इससे देश में एक नए आत्मविश्वास का उद्भव हुआ। ''स्वराज्य'' का उद्देश्य तो पूरा नहीं किया, परन्तु अब वह क्रान्तिकारी माँग नहीं रह गयी और प्रथम विश्वयुद्ध के समय सरकार ने यह घोषणा की कि ''भारतीय संवैधानिक सुधारों का उद्देश्य स्वशासन संस्थाएँ स्थापित करना है।''

उदारवादी तथा उग्रवादी विचारों की तुलनाः उदारवादी दल और उग्रवादी दल के लोग दोनों ही मध्यम वर्ग से सम्बन्धित थे और दोनों ही अंग्रेजी शासन के विरूद्ध भारतीयों की शिकायतों को उद्घोषित कररहे थे, फिर भी उनके विचारों तथा कार्य प्रणाली में काफी असमानताएँ थीं:–

1. उदारवादी दल सामाजिक बराबरी और भारत के अंग्रेजी शासन में हिस्सेदारी मांगते थे, क्योंकि वे कहते थे कि हम भी अंग्रेजी प्रजा हैं। उग्रवादी दल यह अधिकार इसलिए मांगता था यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है।

2. उदारवादी दल इंग्लैंड में रहने वाले लोगों से प्रार्थना करते थे और उन्हें अंग्रेजी इतिहास और राजनीतिक विचारों पर विश्वास था जबकि उग्रवादी दल के लोग भारतीय परम्पराओं से प्रेरणा ग्रहण करते थे।

3. उदारवादी दल अंग्रेजों की दैवी देखरेख में राजनीतिक प्रशिक्षण में विश्वास करते थे। उग्रवादी दल अंग्रेजों के दैवी मिशन को केवल एक मायाजाल ही समझते थे।

4. उग्रवादी दल के लोग उदारवादी आन्दोलन को राजनीतिक भिक्षावृति समझते थे। इसकी जगह लोग अहिंसात्मक प्रतिरोध और सामूहिक आन्दोलन में विश्वास करते थे।

5. उदारवादियों के लिए स्वराज्य का अर्थ ''साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक स्वशासन'' था, जबकि उग्रवादियों के लिए स्वराज्य का अर्थ ''विदेशी नियंत्रण से पूर्ण स्वतंत्रता'' था।

6. उदारवादियों का जन आन्दोलन में विश्वास नहीं था जबकि उग्रवादियों ने आरंभ से ही जन आन्दोलन छेड़ने का प्रयास किया।

असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन

राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधी जी का प्रवेश

मोहनदास करमचंद गांधी विदेश में दो दशक रहने के बाद जनवरी 1915 में अपनी गृहभूमि वापस आए। इन वर्षों अधिकांश हिस्सा उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में बिताया। दक्षिण अफ्रीका में ही महात्मा गांधी ने पहली बार सत्याग्रह के रूप में जानी गई अहिंसात्मक विरोध की अपनी विशिष्ट तकनीक का इस्तेमाल किया। 1915 में जब महात्मा गांधी भारत आए तो उस समय का भारत 1893 में जब वे यहां से गए थे तब के समय से अपेक्षाकृत भिन्न था।

1917 का अधिकांश समय महात्मा गांधी ने चम्पारन में किसानों के लिए काश्तकारी की सुरक्षा के साथ–साथ अपनी पसंद की फसल उपजाने की आजादी दिलाने में बीता। अगले वर्ष यानी 1918 में गांधी जी गुजरात के अपने गृह राज्य में दो अभियानों में संलग्न रहे। सबसे पहले उन्होंने अहमदाबाद के एक श्रम विवाद में हस्तक्षेप कर कपड़े की मिलों में काम करने वालों के लिए काम करने की बेहतर

PK Mishra

स्थितियों की मांग की। इसके बाद उन्होंने खेड़ा में फसल चौपट होने पर राज्य से किसानों का लगान माफ करने की मांग की।1914–18 के महायुद्ध के दौरान अंग्रेजों ने प्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया था और बिना जांच के कारावास की अनुमति दे दी थी। अब सर सिडनी रॉलेट की अध्यक्षता वाली एक समिति की संस्तुतियों के आधार पर इन कठोर उपायों को जारी रखा गया। इसके जवाब में गांधी जी ने देशभर में 'रॉलेट एक्ट' के खिलाफ एक अभियान चलाया। पंजाब में, विशेष रूप से कड़ा विरोध हुआ। पंजाब जाते समय गांधी जी को कैद कर लिया गया। डॉ0 किचलू व सत्यपाल की गिरफ्तारी के विरोध में **13 अप्रैल 1919** में अमृतसर में यह खूनखराबे के चरमोत्कर्ष पर ही पहुंच गई। जब एक अंग्रेज ब्रिगेडियर ने एक राष्ट्रवादी सभा पर गोली चलाने का हुक्म दिया तब **जलियांवाला बाग हत्याकांड** के नाम से जाने गए इस हत्याकांड में चार सौ से अधिक लोग मारे गए। रॉलेट सत्याग्रह से ही गांधी जी एक सच्चे राष्ट्रीय नेता बन गए।

असहयोग आन्दोलन (1920–22)

असहयोग आन्दोलन के साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन का तीसरा चरण भी शुरू होता है। इस चरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस चरण में व्यापक जन आंदोलन छेड़े गये तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को गाँधीजी का सशक्त नेतृत्व मिला। इस चरण में असहयोग आन्दोलन के रूप में पहली बार व्यापक जन–आन्दोलन की शुरुआत हुई। इस आन्दोलन को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ इस प्रकार थीं–

1. प्रथम विश्व युद्ध के बाद उभरी राजनैतिक निराशाः प्रथम विश्व युद्धके बाद उपजी राजनैतिक निराशा इस आन्दोलन को छेड़े जाने का प्रमुख कारण बनी। भारतीय जनता को यह उम्मीद थी कि विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद सरकार उसके लिए व्यापक संवैधानिक सुधार करेगी, लेकिन **रॉलेट एक्ट, जलियांवाला कांड, पंजाब में मार्शल लॉ** ने उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार भी लोगों को संतुष्ट नहीं कर सका। इससे भी असंतोष और उभरा।

2. महायुद्ध के बाद की आर्थिक कठिनाइयाँः महायुद्ध के दौरान और उसके बाद जारी आर्थिक कठिनाइयों ने भी जनता को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। महायुद्ध के कारण महंगाई काफी बढ़ गयी, जिसने सभी वर्गों को प्रभावित किया। खाद्यानों की कमी तो थी ही, कीमत भी काफी बढ़ गयी। गाँव के लोग सूखा, बाढ़ और महामारी से भी परेशान थे। इस तरह लोगों को काफी कष्टों का सामना करना पड़ रहा था और वे अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ कसमसा रहे थे।

3. खिलाफत तथा मुस्लिम असंतोषः प्रथम विश्व युद्ध के समय मुस्लिमों का सहयोग पाने के लिए अंग्रेजों ने तुर्की के प्रति वफादार रवैया अपनाने का वादा किया था, पर बाद में वे मुकर गये। भारतीय मुसलमान, जो तुर्की के खलीफा को अपना धर्म गुरु मानते थे, वे काफी क्षुब्ध हो गये। उन्हें लगा कि अब तुर्की के धर्म स्थलों पर खलीफा का नियंत्रण नहीं रह जायेगा। अतः उन्होंने खिलाफत आन्दोलन

करने का निश्चय किया। गाँधीजी को भी मुसलमानों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने का यह सुनहरा अवसर लगा और उन्होंने असहयोग आन्दोलन में इस मांग को भी स्वीकार कर लिया।

4. कांग्रेस का सरकार से मोहभंग : गाँधीजी और उनके जैसे तमाम लोग, जो यह उम्मीद लगाये बैठे थे कि सरकार जलियांवाला बाग और पंजाब में उपद्रवों की निष्पक्ष जांच करवायेगी, धीरे–धीरे निराश हो चले थे। सरकार द्वारा नियुक्त हंटर आयोग घटनाओं की लीपापोती करने में लगा हुआ था। ब्रिटिश संसद ने जनरल डायर के कारनामों को उचित करार दिया। अतः अब नेताओं तथा कांग्रेस को यह लगने लगा कि संवैधानिक तौर–तरीकों से कुछ भी नहीं होने वाला। इस वजह से कांग्रेस ब्रिटिश रवैये से क्षुब्ध होकर असहयोग का रास्ता पकड़ने को तैयार थी।

5. जनता की जागृतिः पिछले चार दशकों की राजनैतिक प्रगति ने भारतीय जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाया था। अंग्रेजी सरकार की प्रवृत्तियों से वह वाकिफ हो चुकी थी। वह सरकार के दमन और धोखेबाजी से क्षुब्ध थी। उसे लग रहा था कि अब चुप रहना कायरता होगी।

कांगेस के नागपुर अधिवेशन 1920 में अहिंसक असहयोग कार्यक्रम को पूर्णतया या आंशिक रूप से प्रारंभ करने, सरकार से सभी प्रकार के स्वैच्छिक सहयोग त्यागने तथा करों की अदायगी न करने का संकल्प लिया गया। इस प्रकार कांग्रेस द्वारा 'सभी प्रकार के वैधानिक और शांतिपूर्ण साधनों द्वारा स्वराज प्राप्ति' के लक्ष्य की घोषणा की गयी। कांग्रेस के इस आन्दोलन में निम्न कार्यक्रम थे–

1. उपाधियों एवं प्रशस्ति–पत्रें का परित्याग,
2. सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार और
3. कर की अदायगी नहीं करना।

इसके रचनात्मक कार्यक्रमों में निम्न बातें थीं–

1. राष्ट्रीय शिक्षा,
2. पंचों द्वारा निर्णय को बढ़ावा देना,
3. खादी कार्यक्रम,
4. हिंदू–मुस्लिम एकता बनाये रखना और
5. अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन चलाना।

इस प्रकार चार कारणों से 1920 का नागपुर अधिवेशन कांग्रेस के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है–

1. परिवर्तित साधनः राजनैतिक रियायतें प्राप्त करने के **संवैधानिक उपायों को छोड़कर** सभी प्रकार के **शांतिपूर्ण और वैधानिक उपाय** अपनाये गये।

2. परिवर्तित लक्ष्यः ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन स्वशासन पाने के लक्ष्य का परित्याग किया गया।

3. परिवर्तित नेतृत्वः अगस्त 1920 में तिलक की मृत्यु के पश्चात कांग्रेस का नेतृत्व निर्विवाद रूप से गांधी के हाथों में चला गया।

4. परिवर्तित दलीय संरचनाः कांग्रेस संगठन को अब अधिक प्रभावकारी, अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण, अधिक युवा तथा राजनीतिक समाजीकरण का साधन बनाया गया।

आन्दोलन की प्रगति

आन्दोलन का प्रथम चरण जनवरी से मार्च 1921 तक माना जाता है, जिसमें गांधीजी एवं अली बंधुओं ने राष्ट्रव्यापी जनसंपर्क अभियान चलाया। इनका आग्रह था कि विद्यार्थी सरकारी नियंत्रण वाले शिक्षण संस्थाओं तथा वकील अदालत छोड़ दें। सी. आर. दास, मोतीलाल नेहरू, एम. आर. जयकर, वल्लभभाई पटेल और अन्य लोगों ने वकालत छोड़ दी। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया गया और कई जगहों पर विदेशी कपड़ों की होली जलायी गयी। इस आन्दोलन का एक अत्यंत लोकप्रिय कार्यक्रम था– ताड़ी की दुकान पर धरना।

आन्दोलन के दूसरे चरण (मार्च से जुलाई 1921) में सारा ध्यानकोष इकठ्ठा करने, सदस्य संख्या बढ़ाने तथा चरखा बांटने पर दिया गया। तिलक स्वराज कोष भी बनाया गया, जिसमें लक्ष्य 1 करोड़ से भी अधिक धन इकठ्ठा किया गया।

तीसरे चरण (जुलाई से नवम्बर 1921) में और अधिक उग्र रूप अपनाया गया। इसमें विदेशी कपड़े एवं प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन का बहिष्कार किया गया। प्रांतीय समितियों को भी नागरिक अवज्ञा करने की अनुमति दी गयी। गांधीजी ने स्वयंसेवकों से जेल भरने का आह्वान किया। बम्बई में कुछ हिंसक झड़पें भी हुईं।

चौथे चरण (नवम्बर से फरवरी 1922) में सरकार ने दमन का सहारा लिया। गांधीजी को छोड़कर सी. आर. दास सहित सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार ने गांधीजी और खिलाफत के नेताओं में फूट डालने का भी प्रयास किया, परन्तु वे असफल रहे। सर्वदलीय सम्मेलन और वायसराय के नाम गांधीजी के पत्र दोनों का सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। गांधीजी ने घोषणा की कि यदि सरकार नागरिक स्वतंत्रता बहाल नहीं करेगी, राजनीतिक बंदियों को रिहा नहीं करेगी तो वे देशव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने को बाध्य हो जायेंगे। गांधीजी ने अंत में बारदोली में जन सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने का निर्णय नागरिक स्वतंत्रता पर पाबंदी लगाने के मुद्दे पर लिया। देश के अन्य भागों से यह अपेक्षा की गयी कि वे अनुशासन और शांति बनाये रखकर सहयोग दें, ताकि बारदोली आन्दोलन पर पूरा ध्यान दिया जा सके। परन्तु इसे और इसके साथ–साथ चल रहे पूरे देश के आन्दोलनों को **11 फरवरी को गांधीजी के कहने पर बंद** कर दिया गया। इसका कारण **5 फरवरी, 1922 को चौरा–चौरी में एक भीड़ द्वारा 22 पुलिस वालों को जिन्दा जलाया** जाना था।

11 फरवरी, 1922 को गांधीजी के आन्दोलन को वापस लेने की घोषणा के साथ ही आन्दोलन वापस ले लिया गया। गांधीजी ने वादा किया था कि यदि उनकी नीतियों पर सही ढंग से अमल किया जाये तो एक साल में स्वराज की स्थापना हो जायेगी। लेकिन स्वराज तो दूर अंग्रेजों ने छोटी–मोटी

रियासतें भी नहीं दीं। लेकिन यह आन्दोलन निरर्थक या असफल नहीं रहा। इस आन्दोलन की अनेक सफलताएं और उपलब्धियां हैं।

1. इस आन्दोलन ने पहली बार देश की जनता को एकताबद्ध किया। इसने दिखाया कि इसे देशभर में भारतीयों के बड़े भाग का समर्थन प्राप्त है। कांग्रेस ने अपने ऊपर लगे 'अल्पमत का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था' के डफरिन के आरोप का मुंहतोड़ जवाब दिया।

2. इस आन्दोलन ने देश की जनता को आधुनिक राजनीति से परिचय कराया और उसमें आजादी की इच्छा जगायी। इसने यह दिखाया कि भारत की दीन–हीन जनता भी आधुनिक राष्ट्रवादी राजनीति की वाहक हो सकती है। यह पहला अवसर था जब राष्ट्रीयता ने गांवों, कस्बों, स्कूलों आदि सबको अपने प्रभाव में ले लिया। हालांकि इसकी उपलब्धियां कम थीं, लेकिन जो कुछ हासिलहुआ, वह आगामी संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक हुआ।

3. बड़े पैमाने पर मुसलमानों की भागीदारी और सांप्रदायिक एकता इस आन्दोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। मुसलमानों की भागीदारी ने ही इस आन्दोलन को जन आन्दोलन का स्वरूप दिया।

4. इस आन्दोलन का एक प्रमुख परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता के मन से भय की भावना समाप्त हो गयी। भारत में ब्रिटिश सत्ता की हैवानी ताकत अब उसके लिए डर का कारण न रही। इससे उनमें आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान जागा।

असहयोग के अप्रत्यक्ष प्रभाव

कांग्रेस द्वारा प्रांतीय कांग्रेस समितियों को उन स्थानों पर, जहाँ लोग आन्दोलन के लिए तैयार थे, नागरिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ करने का अधिकार दिया गया था। मिदनापुर (बंगाल) में संघीयकर बोर्ड के विरुद्ध एक आन्दोलन शुरू किया जा चुका था तथा गुन्टूर (आंध्र प्रदेश) में करबंदी आन्दोलन शुरू होने ही वाला था।

असहयोग आन्दोलन द्वारा सत्ता के प्रति उत्पन्न असंतोष एवं अवज्ञा की भावना ने देश के अन्य भागों में अनेक स्थानीय आन्दोलनों के उदय में सहायता की। हालांकि इन स्थानीय आन्दोलनों ने न तो असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रमों और न ही अहिंसा के सिद्धांतों का कड़ाई से पालन किया। अवध में जवाहर लाल नेहरू एवं अन्य लोगों द्वारा किए जा रहे करबंदी संबंधी प्रचार ने पहले से ही व्याप्त किसान आन्दोलन की उत्तेजना को और भड़का दिया। केरल के मालाबार में असहयोग और खिलाफत संबंधी प्रचार ने मुस्लिम किसानों को उनके जमींदारों के विरूद्ध खड़ा कर दिया। हालांकि कुछ समय के लिए इस आन्दोलन ने सांप्रदायिकता का रंग भी ले लिया।

असम के बागान मजदूरों ने हड़ताल की तथा इससे स्टीमर सेवा में भी हड़ताल हुई। असम एवं बंगाल रेलवे को भी हड़ताल का सामना करना पड़ा। आंध्र में जंगल कानून भंग किया गया। यहाँ लोग जंगल पर अपने पारंपरिक अधिकारों की सुरक्षा चाहते थे। राजस्थान में किसानों एवं आदिवासियों ने अच्छी जीवन प्राप्ति के लिए संघर्ष किये। पंजाब के भ्रष्ट महन्तों से गुरुद्वारे का नियंत्रण छीनने के लिए

अकाली आन्दोलन चला, जो असहयोग आन्दोलन का एक हिस्सा बन गया। अकालियों ने घोर दमन के बावजूद भी अहिंसा का मार्ग नहीं छोड़ा।

झारखण्ड के छोटा नागपुर में आदिवासियों ने ताना भगत आन्दोलन में कर व राजस्व नहीं देने की धमकी दी। इस तरह असहयोग आन्दोलन राजनीतिक तौर पर असफल होते हुए भी व्यापक उपलब्धियों को हासिल करने में सक्षम रहा और भविष्य के आंदोलनों के लिए एक आधार बनाने में सफल रहा।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्रामः

असहयोग से सविनय अवज्ञा आन्दोलन तक

साइमन कमीशन

1919 के अधिनियम में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम के पारित होने के 10 वर्ष पश्चात् भारत में उत्तरदायी सरकार की प्रगति की दिशा में किये गये कार्यों की समीक्षा का प्रावधान किया गया था। इसके अनुसार सरकार को 1931 ई. में इस कार्य के लिए एक आयोग नियुक्त करना था, लेकिन सरकार ने 1927 ई. में ही इस आयोग की नियुक्ति कर दी। इस आयोग के अध्यक्ष थे सर जॉन साइमन। अध्यक्ष सहित इसमें कुल 7 सदस्य थे। इसमें ब्रिटेन के तीनों प्रमुख राजनीतिक दलों (कंजर्वेटिव, लिबरल और लेबर) के प्रतिनिधि रखे गये, परंतु किसी भी भारतीय सदस्य को इसमें नहीं लिया गया। यह प्रजातीय विभेद का एक जीता–जागता उदाहरण था।

कमीशन के गठन तथा उसके सीमित उद्देश्यों के कारण कमीशन के प्रति भारतीयों में क्षोभ उत्पन्न होना नितान्त स्वाभाविक था। कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और लिबरल फेडरेशन ने एक स्वर से कमीशन का विरोध किया।

यह कमीशन 3 फरवरी, 1928 को बम्बई में आकर उतरा। इसी दिन सम्पूर्ण भारत में हड़ताल रखते हुए कमीशन के बहिष्कार का श्री गणेश कर दिया गया। स्थान–स्थान पर काले झण्डों व 'साइमन वापस जाओ'' के नारों से कमीशन का विरोध किया गया। अनेक स्थानों पर पुलिस तथा जनता के मध्य संघर्ष भी हुए। लाहौर में लाला लाजपत राय के नेतृत्व में कमीशन के विरोध में एक विशाल जुलूस का आयोजन किया गया। भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने भारतीय भावनाओं को प्रकट करने के लिए केन्द्रीय व्यवस्थापिका में बम फेंका और लालाजी पर लाठी प्रहार के लिए उत्तरदायी सॉण्डर्स की लाहौर में हत्या कर दी गयी। विरोधों के बावजूद आयोग ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी जो मई 1930 में प्रकाशित हुई। कमीशन दो बार भारत आया तथा अपनी रिपोर्ट तैयार करने में इसे दो वर्ष से अधिक समय लगा। इस रिपोर्ट की सिफारिशें निम्न थीं–

1. प्रांतों में द्वैध शासन की समाप्ति और प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना
2. मताधिकार और विधान सभाओं का विस्तार
3. संघ शासन की स्थापना
4. सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का पूर्ववत् जारी रहना

5. केन्द्रीय क्षेत्र में अनुत्तरदायी शासन

6. केन्द्रीय व्यवस्थापिका का पुनर्गठन

7. वृहत्तर भारतीय परिषद की स्थापना

साइमन कमीशन की रिपोर्ट से भारतीय नेता बहुत असंतुष्ट हुए, क्योंकि

1. रिपोर्ट में भारतीयों की औपनिवेशिक स्वराज की मांग की पूर्ण उपेक्षा की गयी थी।

2. इसने भारतीयों की केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना करने की मांग को स्वीकार नहीं किया।

3. प्रांतों में यद्यपि इसने उत्तरदायी मंत्रिमंडल की स्थापना करने की व्यवस्था की, लेकिन इसके साथ ही प्रांतीय गर्वनरों को कुछ ऐसी विशेष शक्तियां प्रदान करने की सिफारिश की गयी, जिससे उत्तरदायी शासन का महत्व बहुत कम हो जाता।

निस्सन्देह रिपोर्ट निरर्थक तथा रद्दी कागज के समान थी, फिर भी भारतीय समस्याओं के अध्ययन के दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण प्रलेख था। साइमन कमीशन का एक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इसने अप्रत्यक्ष और अस्थायी तौर पर ही सही देश के विभिन्न समूहों और दलों को एकजुट कर दिया।

नेहरू रिपोर्ट

जिस समय पूरा देश साइमन कमीशन का बहिष्कार कर रहा था, उसी समय भारतीय मामलों के मंत्री लॉर्ड बर्केनहेड ने स्वराजवादियों को चुनौती देते हुए कहा था कि, 'वह एक ऐसा संविधान तैयार करें, जिसमें ऐसी व्यवस्थाएं हों कि भारत की जनता आमतौर पर उससे सहमति व्यक्त करे।' भारत सचिव की चुनौती का जवाब देने के लिए कांग्रेस ने फरवरी 1928 में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। इन बैठकों में निश्चित किया गया कि श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में 8 व्यक्तियों की एक समिति बनायी जाये जो 1 जुलाई, 1928 के पहले भारत के लिए संविधान का एक प्रारूप तैयार कर सके। 29 राजनीतिक संगठनों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। कमेटी ने, जिसके सदस्यों में अली ईमाम, तेज बहादुर सप्रु, सुभाष चन्द्र बोस, श्री एम. एस. अणे, सरदार मंगरू सिंह, श्री शोएब कुरैशी तथा श्री जी. आर. प्रधान शामिल थे, शीघ्र ही अपना काम पूरा कर अपना प्रतिवेदन अगस्त 1928 मे पेशकर दिया। यह प्रारूप 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है।

नेहरू रिपोर्ट के प्रमुख सुझाव

1. भारत को औपनिवेशिक स्वराज प्रदान किया जाना चाहिए और उसका स्थान ब्रिटिश शासन के अर्न्तगत अन्य उपनिवेशों के समान होना चाहिए।

2. केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना होनी चाहिए। भारत के गवर्नर जनरल को लोकप्रिय मंत्रियों के परामर्श पर और संवैधानिक प्रधान के रूप मे कार्य करना चाहिए।

PK Mishra

3. केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा द्वि–सदनीय हो और मंत्रिमंडल उसके प्रति उत्तरदायी हो। निम्न सदन का निर्वाचन, वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रीति से तथा उच्च सदन का परोक्ष रीति से हो।

4. प्रांतों में भी केन्द्र की भांति उत्तरदायी शासन की स्थापना हो।

5. केन्द्र और प्रांतों के मध्य शक्ति वितरण की एक योजना प्रस्तुत की गयी, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को प्रदान की गयीं।

6. सांप्रदायिक निर्वाचन का अन्त कर उसके स्थान पर संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था का सुझाव दिया गया। साथ–साथ यह भी सिफारिश की गयी कि अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर उनको आरक्षण प्रदान किया जाये।

7. उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत को ब्रिटिश भारत के अन्य प्रांतों के समान वैधानिक स्तर प्राप्त होना चाहिए।

8. रिपोर्ट में मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया और उन्हें संविधान में स्थान देने की सिफारिश की गयी।

मूल्यांकनः नेहरू रिपोर्ट पर विचार करने के लिए 1928 में ही लखनऊ और दिल्ली में सर्वदलीय सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में भारतीय नेताओं का विरोध उभरकर सामने आया। सम्मेलन में मोहम्मद अली ने रिपोर्ट की आलोचना की, जिन्ना ने अधिक प्रतिनिधित्व की मांग की, तो आगा खां ने देश के हर प्रांत को स्वाधीनता दिए जाने की मांग की। मुसलमानों के अड़ंगा लगाने पर हिन्दू संप्रदायवादी भी अकड़ गये। सिक्खों ने पंजाब में विशेष प्रतिनिधित्व की मांग की।

जिन्ना ने बाद में अपनी '14 सूत्री मांगें' रखी। इसके विपरीत राष्ट्रवादी मुसलमानों का दल; डा. अंसारी, अली इमाम इत्यादि 'नेहरू रिपोर्ट' को स्वीकार करने के पक्ष में थे। स्वयं कांग्रेस में भी इस रिपोर्ट पर मतभेद था। कांग्रेस का वामपंथी युवा वर्ग जिसका नेतृत्व जवाहर लाल नेहरू और सुभाष बोस कर रहे थे और जो औपनिवेशिक स्वतंत्रता से संतुष्ट नहीं थे, ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग को कांग्रेस का उद्देश्य बनाना चाहा था परंतु यह तय हुआ कि अगर एक वर्ष के अन्दर सरकार ने 'डोमिनियन स्टेटस' प्रदान नहीं किया तो कांग्रेस का लक्ष्य 'पूर्ण स्वाधीनता' की प्राप्ति बन जायेगा। कांग्रेस ने यह भी स्वीकार किया कि अगर सरकार नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकृत कर देगी, तो पुनः असहयोग आन्दोलन प्रारंभ कर दिया जायेगा।

यद्यपि नेहरू रिपोर्ट स्वीकृत नहीं हो सकी, लेकिन इसने अनेक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों को जन्म दे दिया। सांप्रदायिकता की भावना जो अंदर–अंदर ही थी, अब उभर कर सामने आ गयी। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों ने इसे फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 1928 ई. की घटनाओं ने पुनः गांधीजी को देश और कांग्रेस की राजनीति के शीर्ष पर आसीन कर दिया। वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के निर्विवाद नेता बनकर प्रकट हुए।

जिन्ना के 14 सूत्र

जिन्ना ने नेहरू रिपोर्ट की संवैधानिक योजना को अस्वीकार कर दिया और अपनी चौदह–सूत्री योजना प्रस्तुत की, जिसमें निम्न बातें थीं:

PK Mishra

1. संविधान का स्वरूप संघात्मक हो, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां प्रांतों में निहित हों।

2. सभी प्रांतों को एक समान स्वायत्तता प्राप्त हो।

3. सभी व्यवस्थापिका सभाओं और निर्वाचित संस्थाओं का गठन अल्पसंख्यकों के पर्याप्त तथा प्रभावपूर्ण प्रतिनिधित्व के आधार पर हो।

4. केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कम से कम एक–तिहाई हो।

5. सांप्रदायिक समूहों को प्रतिनिधित्व देने के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था हो।

6. किसी भी प्रकार का क्षेत्रीय पुनर्गठन पंजाब, बंगाल और उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत में मुसलमानों के बहुमत में परिवर्तनन लाये।

7. सभी संप्रदायों को विश्वास, पूजा, प्रचार, संघ और शिक्षा की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो।

8. किसी भी व्यवस्थापिका सभा या निर्वाचित निकाय में कोई भी ऐसा प्रस्ताव पास न हो जिसका विरोध किसी संप्रदाय के दो–तिहाई सदस्य करें।

9. सिन्ध को बम्बई प्रांत से अलग कर दिया जाये।

10. सीमांत और बलूचिस्तान में अन्य प्रांतों की भांति सुधार लाये जायें।

11. कार्यकुशलता को ध्यान में रखते हुए मुसलमानों को सभी सेवाओं में पर्याप्त स्थान दिया जाये।

12. मुस्लिम संस्कृति, शिक्षा, भाषा, धर्म और व्यक्तिगत कानूनों की सुरक्षा और उन्नति के लिए पर्याप्त संरक्षण की व्यवस्था हो।

13. केन्द्रीय या प्रांतीय मंत्रिमंडलों में कम से कम एक–तिहाई मुसलमान हों।

14. संविधान में संशोधन लाने के लिए संघ के सभी प्रांतों की स्वीकृति आवश्यक हो।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

सर्वदलीय सम्मेलन के 'नेहरू रिपोर्ट' अस्वीकार किये जाने के समय से घटना चक्र तेजी से चला। इस रिपोर्ट से कांग्रेस और लीग दोनों ही असंतुष्ट थे। एक तरफ भारत में नयी राजनीतिक शक्तियों का उदय हो रहा था, तो दूसरी ओर कांग्रेस के अन्दर ही विद्रोह की भावना पनप रही थी। आतंकवादी और क्रांतिकारी गतिविधियाँ बढ़ रही थीं। छात्र शक्ति का उदय हो रहा था, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट विचारधाराएँ पनप रही थीं, किसानों और मजदूरों के आन्दोलन हो रहे थे, सांप्रदायिकता का उदय हो रहा था और साथ–साथ सरकार का दमन–चक्र भी चल रहा था। स्वतंत्रता की मांग कांग्रेस के अन्दर और बाहर बढ़ रही थी। इस भावना को सही दिशा देने और उसका सही ढंग से उपयोग करने के लिए ठोस कार्यक्रम बनाना आवश्यक था। अतः कांग्रेस के सर्वमान्य नेता गांधीजी ने अपने नये हथियार 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का सहारा लिया। मार्च 1930 से महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक नयी दिशा अख्तियार की, जिसकी शुरुआत सविनय अवज्ञा आन्दोलन और डांडी मार्च से हुई। इस आन्दोलन को शुरू करने के कारणों को हम संक्षेप में निम्न रूप से रख सकते हैं–

1. ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकृत कर भारतीयों के लिए संघर्ष के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं छोड़ा। उनके पास संघर्ष के अलावा और कोई चारा नहीं था।

2. देश की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी थी। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी से भारत भी अछूता नहीं रहा। किसानों और मजदूरों की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गयी थी। फलस्वरूप देश का वातावरण तेजी से ब्रिटिश सरकार विरोधी होता गया। गांधीजी ने इस मौके का लाभ उठाकर इस विरोध को सविनय अवज्ञा आन्दोलन की तरफ मोड़ दिया।

3. भारत की विप्लवकारी स्थिति ने भी आन्दोलन को शुरू करने को प्रेरित किया। आंतकवादी गतिविधियाँ बढ़ रही थीं। 'मेरठ षड्यंत्र केस' और 'लाहौर षड्यंत्र केस' ने सरकार विरोधी विचारधाराओं को उग्र बना दिया। किसानों, मजदूरों और आंतकवादियों के बीच समान दृष्टिकोण बनते जा रहे थे। इससे हिंसा और भय का वातावरण व्याप्त हो गया। हिंसात्मक संघर्ष की संभावना अधिक हो गयी थी।

4. सरकार राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना से त्रस्त हो चुकी थी। अतः वह नित्य दमन के नये–नये उपाय ढूंढ़ती थी। इसी संदर्भ में सरकार ने जनवरी 1929 में 'पब्लिक सेफ्टी बिल' या 'काला कानून' पेश किया, जिसे विधानमंडल पहले ही अस्वीकार कर चुका था इससे भी जनता में असंतोष फैला।

5. 31 अक्टूबर, 1929 को वायसराय लार्ड इर्विन ने यह घोषणा की कि, मुझे ब्रिटिश सरकार की ओर से घोषित करने का यह अधिकार मिला है कि सरकार के मतानुसार 1917 की घोषणा में यह बात अंतर्निहित है कि भारत को अन्त में औपनिवेशिक स्वराज प्रदान किया जायेगा। लॉर्ड इर्विन की घोषणा से भारतीयों के बीच एक नयी आशा का संचार हुआ। फलतः वायसराय के निमंत्रण पर गांधीजी, तेज बहादुर सप्रु, विट्ठल भाई पटेल इत्यादि कांग्रेसी नेताओं ने दिल्ली में उनसे मुलाकात की। वायसराय डोमिनियन स्टेट्स के विषय पर इन नेताओं को कोई निश्चित आश्वासन नहीं दे सके। दूसरी तरफ, ब्रिटिश संसद में इर्विन की घोषणा पर असंतोष व्यक्त किया गया। इससे भारतीय जनता को बड़ी निराशा हुई और सरकार के विरुद्ध घृणा की लहर सारे देश में फैल गयी।

6. उत्तेजनापूर्ण वातावरण में कांग्रेस का अधिवेशन दिसम्बर 1929 में लाहौर में हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू थे जो युवक आन्दोलन और उग्र राष्ट्रवाद के प्रतीक थे। इस बीच सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया था। महात्मा गांधी ने राष्ट्र के नब्ज को पहचान लिया और यह महसूस किया कि हिंसात्मक क्रान्ति को रोकने के लिए 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' को अपनाना होगा। अतः उन्होंने लाहौर अधिवेशन में प्रस्ताव पेश किया कि भारतीयों का लक्ष्य अब 'पूर्ण स्वाधीनता' है न कि औपनिवेशिक स्थिति की प्राप्ति, जो गत वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में निश्चित किया गया था।

31 दिसम्बर, 1929 की मध्य रात्रि को रावी के तट पर जवाहरलाल रेहरू ने तिरंगा झंडा फहराया तथा 'स्वतंत्रता की घोषणा' का प्रस्ताव पढ़ा। 26 जनवरी, 1930 को 'पूर्ण स्वतंत्रता दिवस' मनाने की घोषणा की गयी। फरवरी 1930 में कांग्रेस कार्यकारिणी ने महात्मा गांधी को 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारंभ करने का अधिकार दे दिया। पूरे देश में उत्साह की एक नयी लहर दौड़ गयी। कांग्रेस कार्यकारिणी ने यह भी निश्चित किया कि प्रतिवर्ष 26 जनवरी को 'स्वतंत्रता दिवस' मनाया जाये।

गांधीजी ने आन्दोलन प्रारंभ करने के पूर्व वायसराय से बातचीत कर समझौता करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी 11 सूत्री मांगपेश की तथा यह आश्वासन दिया कि अगर सरकार उन्हें स्वीकार कर लेगी, तो वे अपना प्रस्तावित आन्दोलन स्थगित कर देंगे। गांधीजी की 11 सूत्री मांगें निम्न थीं–

1. लगान की राशि आधी कर दी जाये।
2. विनिमय की दर घटाकर 1 शिलिंग 4 पेंस की जाये।
3. सैनिक खर्च में 50 प्रतिशत की कमी की जाये।
4. असैनिक कर्मचारियों के वेतन में कमी हो।
5. रक्षात्मक शुल्क लगे और विदेशी वस्तुओं के आयात को नियंत्रित किया जाये।
6. भारतीय समुद्रतट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रहे।
7. गुप्तचर विभाग या तो समाप्त कर दिया जाये या उस पर सार्वजनिक नियंत्रण हो।
8. भारतीयों को आत्मरक्षा के लिए आग्नेय अस्त्र रखने का अधिकार मिले तथा इसके लिए अनुमति पत्र प्रदान किये जाये।
9. नमक कर समाप्त किया जाये।
10. नशीली वस्तुओं की बिक्री बंद की जाये।
11. सभी राजनैतिक कैदियों को छोड़ दिया जाये और निर्वासित भारतीयों को स्वदेश आने की अनुमति दी जाये।

गांधीजी ने अपने पत्र में इर्विन को यह भी लिखा कि अगर सरकार उनकी मांगों पर ध्यान नहीं देती है, तो वह नमक कानून भंगकर 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारंभ कर देंगे। परन्तु वायसराय ने गांधी के पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी बीच सरकार का दमन चक्र और तेज हो गया। सुभाष चन्द्र बोस एवं अन्य कार्यकर्त्ताओं को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। बाध्य होकर गांधीजी ने अपना आन्दोलन 'डांडी मार्च' से आरंभ करने का निश्चय किया।

आन्दोलन का प्रारंभः दूसरा नागरिक अवज्ञा आन्दोलन **12 मार्च, 1930** को प्रसिद्ध 'डांडी मार्च' के साथ प्रारंभ हुआ। गांधीजी अपने **78 सहयोगियों** के साथ साबरमती आश्रम से 200 मील; (375 कि.मी.) की दूरी पर समुद्र तट पर बसे गांव दांडी के लिए निकल पड़े। उनकी यात्रा, उनके भाषणों तथा जनता पर उनके प्रभाव की खबर प्रतिदिन समाचार पत्रों में छपती रही। रास्ते में पड़ने वाले सैकड़ों गाँवों के अधिकारियों ने त्यागपत्र दे दिये। सुभाषचन्द्र बोस ने डांडी यात्रा की तुलना नेपोलियन के 'पेरिस मार्च' और मुसोलिनी के 'रोम मार्च' से की। 6 अप्रैल, 1930 को गांधीजी ने डांडी पहुंचकर समुद्र तट से थोड़ा–सा नमक उठाकर शांतिपूर्ण और अहिंसक ढंग से नमक कानून का उल्लंघन किया।

सारे देश में सनसनी फैल गयी, जो जहाँ था वहीं सरकार से असहयोग करने लगा। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल कॉलेज छोड़ दिये, किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया, मजदूरों ने हड़तालें रखीं और प्रदर्शन किये। विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी, सरकारी दुकानों पर धरने दिये गये। सरकार

ने भी अपना दमन चक्र चलाया। हजारों कार्यकर्ताओं को जेल में भर दिया गया। अनेक व्यक्तियों को सेना और पुलिस के डंडों का शिकार होना पड़ा। कांग्रेस को गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया और 15 मई को गांधीजी को भी गिरफ्तारकर लिया गया। गांधीजी की गिरफ्तारी से आन्दोलन दबने की बजाय और भड़क उठा। आन्दोलन तेजी से फैला। पूरे देश में नमक कानून तोड़े गये। महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा मध्य भारत में नमक कानून का व्यापक उल्लंघन किया गया। पूर्वी भारत में ग्रामीण जनता ने चौकीदारी कर देने से इंकार कर दिया। आन्दोलन बढ़कर एकदम उत्तर–पश्चिमी छोर तक भी पहुँचा जहां, 'सीमांत गांधी' के नाम से प्रसिद्ध खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में पठानों ने 'खुदाई खिदमतगार' नामक संगठन बनाकर स्वाधीनता संघर्ष को आगे बढ़ाया।

इस समय पेशावर में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। गढ़वाली सिपाहियों के दो प्लाटूनों ने अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया, इसके नेता चन्द्र सेन गढ़वाली थे। इसके बदले उनका कोर्ट मार्शल किया गया। इसने स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रवाद की भावना सेना में भी फैल चुकी है। इसी तरह आन्दोलन की गूंज देश के पूर्वी कोने में भी सुनाई पड़ी। इसमें मणिपुरी जनता की बहादुरी से भरपूर भागीदारी रही। नागालैंड की अल्पवयस्का रानी गैडिल्यु ने विद्रोह का झंडा उठाया। 1932 में यह युवा रानी पकड़ी गयी और उसे आजीवन कारावास की सजा मिली। बंगाल में चटगांव पर सूर्यसेन और उसके साथियों ने अधिकार कर लिया। इस आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता स्त्रियों की भागीदारी थी।

हजारों स्त्रियों ने घरों से बाहर निकलकर आन्दोलन में सक्रिय सहयोग दिया। यहां यह उल्लेखनीय है कि मुस्लिम लीग को छोड़ भारत के सभी दलों और सभी वर्गों ने इस आन्दोलन का साथ दिया। अब सरकार भी गांधीजी और कांग्रेस के महत्व को समझने लगी। वह समझ गयी कि आन्दोलन को सिर्फ ताकत के बल पर नहीं दबाया जा सकता है। अतः संवैधानिक सुधारों की बात सोची जाने लगी। इसी उद्देश्य से लन्दन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन हुआ, लेकिन कांग्रेस के बहिष्कार के चलते वह असफल रहा। बाध्य होकर सरकार को गांधी के साथ समझौता–वार्ता करनी पड़ी, जो 'गांधी–इर्विन पैक्ट' के नाम से विख्यात है।

गांधी इर्विन समझौता (मार्च 1931)

गांधीजी को 26 जनवरी, 1931 को यरवदा जेल से रिहा कर दिया गया और 17 फरवरी से दिल्ली में गांधी और इर्विन के मध्य वार्ता प्रारंभ हो गयी। 5 मार्च, 1931 को 'गांधी–इर्विन पैक्ट' के मसविदे पर हस्ताक्षर किये गये। इस समझौते के अनुसार सरकार ने निम्न वादे किये–

1. हिंसात्मक अपराधों के बंदियों के अतिरिक्त समस्त राजनीतिक बंदियों को मुक्त कर दिया जायेगा।
2. सरकार द्वारा जब्त संपत्तियों को वापस कर दिया जायेगा।
3. नमक को निःशुल्क तैयार करने या एकत्रित करने की अनुमति दी जायेगी।
4. शराब, अफीम और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर शांतिपूर्वक धरना देने की अनुमति दी जायेगी।

PK Mishra

दूसरी ओर कांग्रेस ने भी निम्नलिखित बातें स्वीकार की–

1. वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर देगी।
2. वह पुलिस ज्यादती के लिए निष्पक्ष जांच की मांग नहीं करेगी।
3. वह भारत के हित में संरक्षणों तथा रक्षा कवचों सहित उत्तरदायित्व के आधार पर दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।
4. वह समस्त बहिष्कारों को बन्द कर देगी।

कांग्रेस के बहुमत ने समझौते का स्वागत किया, परंतु वामपंथियों तथा युवकों ने इसका घोर विरोध किया। सुभाष चन्द्र बोस ने इसे कांग्रेस की पराजय कहा। सरकार ने कांग्रेस की एक भी महत्वपूर्ण मांग नहीं मानी। भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव की फांसी को भी कारावास में नहीं बदला गया। कांग्रेस के स्वतंत्रता के प्रस्ताव और 26 जनवरी का वादा, दोनों की समझौते के दौरान उपेक्षा की गयी। वस्तुतः यह अंग्रेजों की कूटनीतिक विजय थी, क्योंकि इसके द्वारा कांग्रेस आन्दोलन को स्थगित करने को तैयार हो गयी, जो दिन प्रति दिन तीव्र होता जा रहा था और सरकार की स्थिति डाँवाडोल होती जा रही थी।

समझौते के तत्काल बाद 23 मार्च 1931 को भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को फांसी पर लटका दिया गया। इससे सारे देश में शोक का वातावरण व्याप्त हो गया। अनेक व्यक्तियों ने इसके लिए 'गांधी–इर्विन पैक्ट' को दोषी ठहराया। फलतः जब गांधीजी 1931 में करांची अधिवेशन में भाग लेने पहुंचे तब उनके विरुद्ध प्रदर्शन हुए और उन्हें काले झण्डे दिखाये गये तथा 'गांधी वापस जाओ' के नारे लगाए गये। इस अधिवेशन की सबसे उल्लेखनीय घटना थी 'मौलिक अधिकारों' और 'आर्थिक नीतियों' से संबंधित प्रस्ताव का पास होना। यह वस्तुतः नेहरू रिपोर्ट का विस्तृत और संशोधित स्वरूप था। इसी अधिवेशन ने गांधीजी को दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने की भी अनुमति प्रदान कर उन्हें अपना प्रतिनिधि मनोनीत किया।

आन्दोलन का अंत

जिस समय उपर्युक्त घटनाएं घट रही थी, गांधीजी अपना सारा ध्यान दलितों के उद्धार के लिए लगाये हुए थे। 8 मई, 1933 को उन्होंने दलित समस्या पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए तथा स्वयं एवं अन्य सहयोगियों के शुद्धिकरण के लिए 21 दिनों के उपवास का निश्चय किया। उनकी इस घोषणा ने सरकार को उन्हें जेल से रिहा करने को बाध्य कर दिया। गांधीजी ने सरकार की दमनकारी नीतियों से आम जनता को बचाने के लिए 'नागरिक अवज्ञा आन्दोलन' को स्थगित कर देने का सुझाव दिया। फलतः मई 1934 में पटना अधिवेशन में कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लेने का निर्णय किया।

आन्दोलन की समाप्ति की घोषणा होते ही कुछ कांग्रेसी नेताओं ने पुनः 'कौंसिल प्रवेश' की नीति अपनाने की मांग की। फलतः कांग्रेस ने फिर से कौंसिलों के चुनावों में भाग लेने का निश्चय

किया। 1934ई. में हुए निर्वाचनों में कांग्रेस ने भाग लिया। पंजाब को छोड़कर अन्य सभी प्रांतों में उसे बहुमत प्राप्त हुआ। इससे कांग्रेस की खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हुई।

भारत छोड़ो आन्दोलन से लेकर भारत की आजादी तक

द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम पर भी व्यापक ढंग से पड़ा। इसने स्वतंत्रता आन्दोलन की गति तीव्रकर दी। कांग्रेस को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। मुस्लिम लीग की नीति में भी परिवर्तन आया। सरकार को भी बाध्य होकर विश्वयुद्ध और उसके पश्चात् भारत के लिए संवैधानिक सुधारों और स्वतंत्रता प्रदान करने के वायदे करने पड़े । इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध का भारतीय राजनीतिक पर अमिट प्रभाव पड़ा।

सितम्बर 1939 में विश्व युद्ध का दैत्य संसार के रंगमंच पर आया। अंग्रेजी सरकार ने भारतीय विधानमंडल से भी परामर्श किये बिना, भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिश संसद ने भारत सरकार संशोधन कानून द्वारा वायसराय को असीमित अधिकार प्रदान कर दिये। कांग्रेस ने इस कार्रवाई का विरोध किया। उसने सरकार से अनुरोध किया कि वह पहले युद्ध संबंधी लक्ष्यों को स्पष्ट करे,तभी कांग्रेस उसे अपना समर्थन देगी।

17 अक्तूबर, 1939 को वायसराय लिनलिथगो ने यह स्पष्ट किया कि भारत में 'डोमिनियन स्टेटस' की स्थापना करना ही सरकार का उद्देश्य है। ब्रिटेन स्वयं तो स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के नाम पर युद्ध कर रहा था, परंतु भारतीयों को इससे वंचित रखना चाहता था। कांग्रेस भारत में पूर्ण जनतंत्र और अपने लिए स्वयं संविधान बनाने का अधिकार चाहती थी, जिसे अंग्रेज देना नहीं चाहते थे। इसलिए अक्तूबर 1939 में कांग्रेस कार्यकारिणी ने सभी प्रांतीय कांग्रेसी सरकारों को त्यागपत्र देने का आदेश दिया। अतएव सात कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिये। जिन्ना ने 22 दिसम्बर, 1939 को 'मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया क्योंकि देश को कांग्रेस से छुटकारा मिल गया था। केवल सिन्ध, पंजाब और बंगाल में लोकप्रिय मंत्रिमंडल कार्य करते रहे। लीग इतने से ही संतुष्ट नहीं हुई। उसने जगह–जगह सरकारों में प्रवेश करने की कोशिश की। असम, पश्चिमोत्तर प्रदेश और सिन्ध में लीग के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के सहयोग से सरकारें बनीं।

यद्यपि कांग्रेस ने युद्ध में ब्रिटेन के साथ असहयोग की नीति अपनायी थी, परंतु कांग्रेस का दक्षिणपंथी वर्ग रियायतें प्राप्त कर सरकार से सहयोग करने के पक्ष में था। कांग्रेस ने जुलाई 1940 में सरकार के समक्ष यह मांग रखी कि अगर अंग्रेजी सरकार केन्द्र में भारतीयों को लेकर एक ऐसी सरकार बना दे, जो विधानसभा के प्रति उत्तरदायी हो और सरकार युद्ध के पश्चात् भारत को स्वाधीनता प्रदान करे, तो कांग्रेस युद्ध में सरकार को सहयोग दे सकती है। अंग्रेजी सरकार इन शर्तों को मानने को तैयार नहीं थी। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने यह स्पष्टतया घोषणा की कि 'अटलांटिक चार्टर' भारत पर लागू नही होगा।

PK Mishra

अगस्त प्रस्ताव (The August offer 8 August, 1940)

इस समय तक युद्ध में जर्मनी की तेजी से विजय हो रही थी। डेनमार्क, नार्वे, हालैंड, फ्रांस आदि उसके अधिकार में आ गये थे। फ्रांस में अंग्रेजी सेना को मुंह की खानी पड़ी थी और स्वयं ब्रिटेन पर खतरे के बादल मँडरा रहे थे। युद्ध के कारण ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था भी बुरी तरह प्रभावित हुई थी। ऐसी स्थिति में सरकार को भारत के समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता थी। अतः चर्चिल से अनुमति लेकर भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए वायसराय लिनलिथगो ने **8 अगस्त, 1940** को अपना *'अगस्त प्रस्ताव'* प्रस्तुत किया जिसमें निम्न बातें थीं–

(1)ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।

(2) युद्ध संबंधी विषयों पर सरकार को सलाह देने के लिए **'युद्ध परामर्शदात्री परिषद'** (War Advisory Council) बनायी जायेगी, जिसमें भारतीयों को भी शामिल किया जायेगा।

(3) युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सभी वर्गों एवं राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाकर संवैधानिक विकास की समस्या पर विचार किया जायेगा। अर्थात अंग्रेजी सरकार इस बात से सहमत है कि नया संविधान बनाना मुख्यतः भारतीयों का अपना उत्तरदायित्व है।

(4)अल्पसंख्यकों की स्वीकृति के अभाव में सरकार किसी भी संवैधानिक परिवर्तन को लागू नहीं करेगी।

(5) वायसराय की कार्यकारिणी का विस्तार और अधिक भारतीयों को स्थान।

यह घोषणा एक महत्वपूर्ण प्रगति थी, क्योंकि इसमें स्पष्ट कहा गया था कि भारत का संविधान बनाना भारतीयों का अपना अधिकार है और इसमें स्पष्ट 'प्रादेशिक स्वशासन' (Dominion Status) की प्रतिज्ञा की गयी थी। परन्तु कांग्रेस ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। वह स्वतंत्रता और अपनी सरकार की मांग कर रही थी, जो उसे नहीं मिली। इस प्रस्ताव की सबसे बुरी बात यह थी कि इसमें अल्पसंख्यकों को जरूरत से ज्यादा महत्व प्रदान किया। इससे कालांतर में सांप्रदायिकता और देश के विभाजन को बल मिला। इसी कारण जहाँ कांग्रेस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, वहीं मुस्लिम लीग इस प्रस्ताव से संतुष्ट थी। उसके हाथ में एक ऐसा हथियार आ गया था, जिसके सहारे वह आसानी से पाकिस्तान प्राप्त कर सकती थी। हालांकि लीग ने भी प्रस्ताव से असंतुष्ट होने का ही दिखावा किया, क्योंकि इसमें पाकिस्तान की मांग को स्पष्टतः स्वीकार नहीं किया गया था।

व्यक्तिगत अवज्ञा और बारदोली अधिवेशन

यद्यपि कांग्रेस सरकार से सहयोग करना चाहती थी, परंतु सरकारी रवैये से क्षुब्ध होकर कांग्रेस को पुनः आन्दोलन का मार्ग चुनना पड़ा। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक था कि कांग्रेस की नीतियों से उसकी प्रतिष्ठा जनता में घटती जा रही थी। इसे बचाये रखने के लिए कांग्रेस के सामने आन्दोलन शुरू करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था।

PK Mishra

कांग्रेस ने **अगस्त 1940** में महात्मा गांधी के नेतृत्व में **व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा** आन्दोलन शुरू करने का निश्चय किया। 17 अक्तूबर,1940 को यह आन्दोलन शुरू हुआ। **पहले सत्याग्रही विनोबा भावे** हुए। नेहरू ने भी इसमें भाग लिया। गांधीजी के सत्याग्रहियों पर नियंत्रण के बावजूद हजारों व्यक्ति जेल गये। इसी बीच अगस्त प्रस्ताव के अनुसार वायसराय की कार्यकारिणी का विस्तार कर उसमें भारतीयों की संख्या बढ़ा दी गयी। कांग्रेस और लीग इसमें सम्मिलित नहीं हुई। इस समय तक युद्ध में ब्रिटेन की स्थिति नाजुक होती जा रही थी व इधर जापानी भय लगातार बढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने सरकार को परेशान न करने का निश्चय किया और संभावित जापानी आक्रमण को आधार बनाकर बारदोली अधिवेशन में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द करने का निश्चय किया।

1942 का क्रिप्स शिष्टमंडल

हताशा और निराशा के वातावरण में ब्रिटेन भारत का सक्रिय सहयोग पाने के लिए परेशान था, ताकि न केवल जापान को आगे बढ़ने से रोका जा सके, बल्कि युद्ध की तैयारी में उसे भरपूर मदद मिल सके। इसके अलावा चीन और अमरीका भी ब्रिटेन पर दबाब डाल रहे थे कि वह भारत की राजनीतिक समस्या का उचित समाधान करे। अतः चर्चिल ने युद्धकालीन मंत्रिमंडल के एक सदस्य सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजने की योजना बनायी। क्रिप्स **23 मार्च,1942 को दिल्ली पहुँचे** और 30 मार्च, 1942 को अपनी योजना प्रस्तुत की, जिसमें अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित बातें थीं—

(1) युद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद भारत को **डोमिनियन स्टेटस** की प्राप्ति, जिसमें राष्ट्रमंडल से अलग होने का अधिकार भी शामिल होगा।

(2) युद्ध के पश्चात् भारत के लिए एक **संविधान निर्मात्री निकाय** का गठन, जिसके सदस्यों का चुनाव प्रांतीय विधायिका से होगी और जिसमें देशी रियासतों के द्वारा मनोनीत सदस्य भी होंगे।

(3) **प्रांतों को भारतीय संघ से अलग अपना अस्तित्व बनाये रखने का अधिकार होगा** तथा वे अपने भविष्य के बारे में सीधे ब्रिटेन से समझौता कर सकेंगे।

(4) ब्रिटिश सरकार और संविधान सभा में एक संधि होगी, जिसमें अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय धार्मिक और अल्पसंख्यक जातियों को दिये गये आश्वासनों और सुरक्षा का वर्णन होगा। अर्थात् नये संविधान में उन सुविधाओं को बनाये रखना होगा।

(5) देश की रक्षा की जिम्मेदारी सिर्फ ब्रिटेन की होगी तथाअपवादस्वरूप एक भारतीय, रक्षा सदस्य के रूप में नियुक्त किया जायेगा।

एम. एन. राय एवं ए. घोष जैसे कुछ नेताओं ने सकारात्मक प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं। वास्तव में उस समय धुरी राष्ट्रों की पराजय ज्यादा महत्वपूर्ण थी, क्योंकि भारत एवं विश्व के लिए तानाशाही का खतरा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से अधिक घातक था। इसे छोड़कर मुस्लिम लीग सहित सभी दल इसके विरुद्ध थे। एक पृथक मुस्लिम राष्ट्र की घोषणा लीग चाहती थी तथा वह अंतरिम सरकार में भी आधी

हिस्सेदारी चाहती थी। दूसरे अल्पसंख्यकों ने भी और अधिक सुरक्षा की मांग की। कांग्रेस को डोमिनियन स्टेटस, देशी राज्यों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों की व्यवस्था एवं प्रांतों को स्वतंत्र रूप से समझौता करने के स्वविवेकीय अधिकार पर आपत्ति थी।

ब्रिटेन ने प्रभावकारी शक्ति को तुरंत भारतीयों के हाथों में हस्तांतरित करने व भारत की सुरक्षा में हिस्सा देने से इन्कार कर दिया। अंततः इस मुद्दे पर बातचीत टूट गयी। गांधीजी ने इसे 'उत्तरतिथिक चेक' (Postdated Check) की संज्ञा दी। इन सबके बावजूद क्रिप्स प्रस्ताव ने 'अगस्त प्रस्ताव' से आगे संवैधानिक प्रगति की दिशा में कुछ ठोस कार्य किये, उदाहरणस्वरूप राष्ट्रमंडल से अलग होने के साथ–साथ डोमिनियन स्टेटस का निश्चित आश्वासन तथा सिर्फ भारतीय सदस्यों से बनने वाली संविधान सभा। इस तरह क्रिप्स मिशन भारतीयों का सक्रिय सहयोग पाने के अपने प्राथमिक उद्देश्य में असफल रहा, फिर भी इसका वास्तविक लाभ चर्चिल को ही हुआ। उसने रूजवेल्ट को संतुष्ट कर दिया कि भारत में संवैधानिक सुधारों के लिए भारतीय नेता ही तैयार नहीं हैं।

11 अप्रैल, 1942 को यह प्रस्ताव वापस लिया गया। इस असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि क्रिप्स को बातचीत में लचीला होने की सुविधा नहीं थी। उसे 'प्रारूप घोषणा' के अतिक्रमण का अधिकार नहीं था। क्रिप्स मिशन की असफलता ने भारतीयों को कटुता से भर दिया तथा इससे अंततः 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का जन्म हुआ।

भारत छोड़ो आन्दोलन

अगस्त क्रान्तिः क्रिप्स शिष्टमंडल की असफलता से सभी को निराशा हुई। अभी तक कांग्रेस ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया था; सिवाय संविधान सभा की मांग के जिससे अंग्रेजों को परेशानी हो। इसी बीच मित्र राष्ट्रों की स्थिति और खराब होने लगी। जापान की प्रगति देखकर वे सशंकित थे। इसलिए अंग्रेजों ने भी बंगाल में 'पीछे हटने की नीति' का पालन करने की योजना बना ली। इन सभी कारणों से भारत में आतंक और बेचैनी व्याप्त हो गयी। अतः अब जब कि जापान भारत के द्वार पर खड़ा था, कांग्रेस चुप नहीं रह सकती थी।

'हरिजन' में गांधीजी ने लिखा कि, भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण है। इसलिए गांधीजी ने सरकार से भारत छोड़ने और सत्ता भारतीयों को सौंपने की मांग की। कांग्रेस के अनेक नेता गांधी के इस कार्य से प्रसन्न नहीं थे। वे समझते थे कि जिस समय भारत और ब्रिटेन पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे थे, उस समय आन्दोलन की बात अव्यावहारिक थी एवं इसकी सफलता संदिग्ध थी। सरदार पटेल और गांधी के प्रयासों से अंततः जुलाई 1942 में वर्धा में कांग्रेस कार्यकारिणी ने गांधी के अहिंसक विद्रोह के कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान कर दी। **8 अगस्त, 1942** को **बम्बई** में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में **'अगस्त प्रस्ताव'** पेश किया गया। प्रस्ताव में कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति यथाशीघ्र हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में एक अस्थायी सरकार बनायी जायेगी। भारत अपने सभी साधनों का इस्तेमाल स्वतंत्रता

PK Mishra

के लिए तथा नाजीवाद, फासीवाद और साम्राज्यवाद के आक्रमण के खिलाफ करेगा। इसी अवसर पर गांधीजी ने देशवासियों से **'करो या मरो'** का नारा दिया अर्थात् हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या इसी प्रयास में मर मिटेंगे।

सरकार पहले से ही कांग्रेस की गतिविधियों पर नजर रखे हुई थी। 9 अगस्त, 1942 की तड़के सुबह ही महात्मा गांधी, वर्किंग कमेटी के सदस्य तथा अन्य अनेक नेता बम्बई तथा देश के अन्य भागों में गिरफ्तार कर लिए गये। अंग्रेजों ने इस कार्य को *'आपरेशन जीरो ऑवर'* की संज्ञा दी थी। गांधीजी को पूना के आगा खाँ पैलेस में सरोजिनी नायडू के साथ रखा गया। राजेन्द्र प्रसाद पटना में नजरबंद किये गये। जय प्रकाश नारायण को हजारी बाग के केन्द्रीय कारावास में रखा गया।

इन घटनाओं ने जनता को क्रोधित कर दिया। सारे नेता जेल में थे, अतः उनको रोकने वाला कोई नहीं था। फलतः गुस्से में जनता ने हिंसा और विरोध का सहारा लिया। जगह–जगह हड़ताल और प्रदर्शन किये गये। सरकारी कार्यालयों, रेलवे स्टेशनों, डाक तार आदि को भारी क्षति पहुंचायी गयी। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र में कई स्थानों पर विद्रोहियों ने अस्थायी नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। कई देशी रियासतों में भी लोग इस क्रांतिकारी हिंसा से प्रभावित हुए थे। बलिया (यू.पी.), तामुलक; मिदनापुर बंगाल, सतारा; बम्बई तथा तालचर, उड़ीसा में क्रान्तिकारियों ने समानांतर सरकार की स्थापना कर ली थी।

इस आन्दोलन में विभिन्न क्रान्तिकारी गतिविधियों के माध्यम से व्यापक जन–प्रतिक्रिया दिखाई दी। श्रमिक वर्ग बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद, जमशेदपुर तथा पूना आदि जगहों पर हड़ताल पर चला गया। व्यापक जन प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप पटना का अन्य जगहों से सम्पर्क टूट गया। भूमिगत क्रान्तिकारी गतिविधियों की प्रवृत्ति को जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया तथा अरुणा आसफ अली ने एक नयी दिशा प्रदान की। जय प्रकाश नारायण तथा रामानन्द मिश्र हजारी बागसेन्ट्रल जेल से भाग गये एवं नेपाल में रहकर भूमिगत आन्दोलन को संगठित किया। अरुणा आसफ अली बम्बई में सक्रिय रहीं। भूमिगत क्रान्तिकारियों का सबसे अधिक साहसिक कदम था– कांग्रेस रेडियो की स्थापना, जिसका प्रसारण लम्बे समय तक होता रहा। सरकार ने भी अपना दमन चक्र चलाया और लगभग 10,000 व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया।

मुस्लिम लीग इस आन्दोलन से अलग रही। जिन्ना ने 23 मार्च, 1943 को 'पाकिस्तान दिवस' मनाने का आह्वान किया और समस्त भारत के मुसलमानों से कहा कि पाकिस्तान ही मुसलमानों का राष्ट्रीय उद्देश्य है। जिन्ना ने अंग्रेजों के खिलाफ 'बांटो और भागो' का नारा भी दिया। लीग ने भी इसका समर्थन किया। रूसी प्रभाव में आकर कम्युनिष्ट पार्टी भी आन्दोलन विरोधी बन गयी। उसने अपने आपको आन्दोलन से अलग रखा और सरकार की हिमायती बन गयी।

फलतः पूर्ण समर्थन के अभाव में और सरकारी दमन के कारण 1942 की क्रांति असफल हो गयी। सरकार ने आन्दोलन को बर्बर ढंग से कुचल दिया। इस आन्दोलन का महत्व यही है कि इससे ब्रितानी शासकों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह आ गयी कि भारत में उनके साम्राज्यवादी शासन के

दिन गिने–चुने रह गये हैं। शेष रह गयी स्वतंत्रता अब सौदे की बात नहीं थी, बल्कि अब भविष्य में होने वाला कोई भी समझौता सिर्फ सत्ता हस्तांतरण के तरीके के बारे में होना था।

भारत छोड़ो आन्दोलन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसने विदेशों में भारतपक्षीय जनमत को प्रबल बनाया। उदाहरणस्वरूप चीन के प्रधान च्यांग काइ शेक ने अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट को लिखा कि अंग्रेजों के लिए सबसे श्रेष्ठ नीति यही है कि भारत को पूर्ण स्वतंत्रता दे दें। रूजवेल्ट ने यही बात चर्चिल से कही।

राजगोपालाचारी योजना और जिन्ना

क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात ्सरकार ने अगस्त क्रान्ति की हिंसक घटनाओं का दोषारोपण गांधीजी और कांग्रेस पर किया। गांधीजी इतने बड़े झूठे आरोप को सहने के लिए तैयार नहीं थे। अतः गांधीजी ने 10 फरवरी, 1944 से 21 दिन के उपवास का निश्चय किया। गांधीजी का यह उपवास सरकार की पाशविक हिंसा के विरोध और आत्मशुद्धि के लिए था। अंततः खराब स्वास्थ्य के कारण सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया।

जेल से छूटने के बाद गांधीजी ने राजनीतिक गतिरोध को दूर करने की दृष्टि से सरकार से समझौता वार्ता चलाना शुरू किया। उन्होंने वायसराय को एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस का भविष्य में सत्याग्रह करने का इरादा बिल्कुल नहीं है, बशर्ते कि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए कदम उठाये जायें। लेकिन सरकार ने यह शर्त रखी कि कांग्रेस पहले भारत छोड़ो आन्दोलन वापस ले ले और आन्दोलन की नीति का परित्याग करे। अतः संवैधानिक गतिरोध पूर्ववत् बना रहा। इस गतिरोध को दूर करने के उद्देश्य से मार्च 1944 में श्री राजगोपालाचारी ने एक योजना तैयार की। उसमें मुस्लिम लीग से सांप्रदायिक समस्या का निवारण करने के उद्देश्य से एक समझौता करने का प्रयास किया गया था। गांधीजी ने जिन्ना से बातचीत शुरू की। किन्तु उसने इस योजना को स्वीकार नहीं किया। 'राज गोपालाचारी योजना' की मुख्य बातें निम्न थीं–

1. मुस्लिम लीग स्वतंत्रता की भारतीय मांग को स्वीकार करेगी और कांग्रेस के साथ संक्रान्ति काल के लिए अंतरिम सरकार के निर्माण में सहयोग करेगी।
2. युद्ध समाप्ति के पश्चात् भारत के उत्तर–पश्चिम एवं उत्तर–पूर्व के उन क्षेत्रें में जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे, एक आयोग द्वारा उन इलाकों को स्पष्ट करना था। इन इलाकों में जनमत संग्रह द्वारा यह निश्चित करना था कि वे भारत में रहना चाहते हैं या उससे अलग होना।
3. बंटवारे की स्थिति में प्रतिरक्षा, संचार, आवागमन एवं जनसंख्या का आदान–प्रदान एक समझौता द्वारा तय किया जायेगा।
4. ये शर्तें तभी लागू होंगी जब ब्रिटेन द्वारा सत्ता का पूर्ण हस्तांतरण कर दिया जाय।

गांधीजी इस योजना के साथ जिन्ना से मिले, किन्तु जिन्ना ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह पाकिस्तान में उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत, सिन्ध, बलुचिस्तान के साथ–साथ समस्त पंजाब, समस्त बंगाल

और असम चाहते थे। इसके अलावा जिन्ना जनमत संग्रह में केवल मुसलमानों को भाग लेने देना चाहता था। उसने कहा कि राजाजी की योजना के अनुसार एक अंगहीन और दीमक लगा हुआ पाकिस्तान (Maimed, Mutilated and moth-eaten Pakistan) होगा। अतः गांधी–जिन्ना वार्ता विफल हो गयी। वार्ता की विफलता ने विभाजन को अवश्यंभावी बना दिया। जिन्ना का राजनीतिक महत्व अधिक बढ़ गया। वे मुसलमानों के सबसे बड़े नेता बन गये। स्वयं मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा था कि, गांधी जी का इस अवसर पर जिन्ना से बातचीत करना भारी राजनीतिक गलती थी। इससे जिन्ना को एक नया और अतिरिक्त महत्व मिल गया, जिसका उसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति (पाकिस्तान की स्थापना) के लिए खूब इस्तेमाल किया।

वैवेल योजना और शिमला सम्मेलन

1943 में लॉर्ड लिनलिथगो की जगह लार्ड वैवेल भारत के नये गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। इसके पहले वे भारतीय सेना के सर्वोच्च सेनापति थे, अतः उन्हें भारतीय समस्याओं की अधिक जानकारी थी। भारत आते ही उन्होंने संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के प्रयत्न शुरू कर दिये। इधर इंग्लैंड में चुनाव होने वाले थे, अतः चर्चिल ने 1945 में विचार–विमर्श के लिए वैवेल को लन्दन बुलाया। वापस आकर जून 1945 में वैवेल ने संवैधानिक सुधारों की रूपरेखा प्रस्तुत की। इसकी मुख्य बातें निम्न थीं–

(1) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में सम्मिलित होने के लिए सभी राजनैतिक दलों के नेताओं को निमन्त्रित किया जायेगा। स्वयं गवर्नर जनरल और प्रधान सेनापति के अतिरिक्त इस परिषद के अन्य सभी सदस्य भारतीय राजनीतिक दलों के नेता ही होंगे।

(2) सरकार का विदेश विभाग भी एक भारतीय सदस्य के हाथ में होगा।

(3) कार्यकारिणी परिषद में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर होते हुए सभी प्रमुख संप्रदायों को संतुलित प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

(4) कार्यकारिणी परिषद एक प्रकार की अंतरिम राष्ट्रीय सरकार के समान होगी और गवर्नर जनरल निषेधाधिकार का प्रयोग अकारण नहीं करेगा।

(5) दूसरे अधिराज्यों के समान ही भारत में भी ब्रिटेन के व्यापारिक एवं अन्य हितों की देखरेख के लिए ब्रिटिश उच्चायुक्त की नियुक्ति की जायेगी।

(6) युद्ध की समाप्ति पर भारतीय लोग अपने संविधान का स्वयं निर्माण करेंगे।

(7) शिमला में शीघ्र ही भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया जायेगा।

25 जून, 1945 को शिमला में वैवेल की अध्यक्षता में सम्मेलन प्रारंभ हुआ, जिसमें कांग्रेस और लीग के अतिरिक्त सिक्ख, दलित वर्ग एवं यूरोपीयन दल के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। सम्मेलन में 'वैवेल प्रस्ताव' पर विचार किया गया। सम्मेलन आशापूर्ण वातावरण में प्रारंभ हुआ, लेकिन दो दिन के उपरान्त ही स्थगित कर दिया गया। इसका कारण यह था कि वायसराय की कार्यकारिणी

परिषद के निर्माण पर कोई समझौता नहीं हो सका। मौलाना आजाद ने कांग्रेस की ओर से कार्यकारिणी की जो सूची प्रस्तुत की, उसमें तीन मुस्लिम लीग के सदस्यों के साथ दो राष्ट्रीय मुसलमानों को भी सम्मिलित किया गया। जिन्ना ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि कार्यकारिणी परिषद के पांचों मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के ही प्रतिनिधि होने चाहिए। जिन्ना के इस दावे को कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार जिन्ना के इस हठधर्मी से टकराकर वैवेल योजना समाप्त हो गयी। 14 जुलाई, 1945 को वायसराय ने सम्मेलन को असफल कहकर समाप्त कर दिया।

शिमला सम्मेलन ने दो बातें स्पष्ट कर दीं। प्रथम, ब्रिटिश सरकार अनिच्छा से ही सही भारतीयों को भारत का शासन सौंपना चाहती है तथा दूसरा भारत की संवैधानिक समस्या का समाधान तब तक संभव नहीं है, जब तक कि सांप्रदायिक समस्या का निराकरण न हो जाये।

इग्लैंड एवं भारत में चुनाव

जुलाई 1945 के आम चुनाव में मजदूर दल को आशातीत सफलता मिली तथा चर्चिल की जगह एटली प्रधानमंत्री बने। एमरी के स्थान पर पैथिक लॉरेंस को भारत मंत्री नियुक्त किया गया। भारतीय वायसराय वैवेल से विचार–विमर्श करने के बाद एटली ने भारत में प्रांतीय और केन्द्रीय विधानसभाओं के लिए चुनाव की घोषणा की।

1945–46 के चुनावों में सामान्य स्थानों पर कांग्रेस को तथा मुसलमानों के लिए आरक्षित स्थानों पर लीग को आशातीत सफलता मिली। केन्द्रीय विधान सभा में कांग्रेस को 57 तथा लीग को 30 स्थान मिले। फलस्वरूप बहुसंख्यक हिन्दू प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। बंगाल और सिन्ध में लीग की सरकार बनी, परंतु पंजाब में खिज्र हयात खां के नेतृत्व में कांग्रेस, अकाली तथा यूनियनिस्ट दल के मिले–जुले मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ। इस निर्वाचन द्वारा लीग का यह दावा सत्य हो गया कि वह मुसलमानों के अधिक भाग का प्रतिनिधित्व करती है, क्योंकि निर्वाचन में लीग को मुस्लिम मतदाताओं के 75 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे।

केबिनेट मिशन योजना 1946

इंग्लैड में मजदूर दल की सरकार स्थापित हो गयी। मजदूर दल ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में कहा था कि उनकी सरकार बनने पर वह भारत को औपनिवेशिक स्वराज प्रदान करेगा। लेकिन युद्ध के दौरान कुछ ऐसी घटनाएं घटी थीं कि ब्रिटिश सरकार भारतीय स्वतंत्रता को स्वीकार करने को बाध्य हो गयी। भारतीय जनता में भी आशा की लहर का संचार हुआ। वस्तुतः दो वर्ष के अन्दर ही अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये।

19 फरवरी, 1946 को एटली ने भारत की समस्या के समाधान के लिए केबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की। यह मिशन भारतीय नेताओं से भारतीय स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार विनिमय

PK Mishra

करने के लिए यहां आया। भारत के वायसराय ने बताया कि मिशन में **भारतमंत्री लार्ड पैथिक लारेंस**, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स और ए. बी. एलेक्जेंडर होंगे। इसके पश्चात् 15 मार्च, 1946 को एटली ने ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में कहा कि, भारत को यह तय करने का अधिकार है कि उसका संविधान केसा होगा, वह स्वाधीन होगा या ब्रिटिश कॉमनवेल्थ का सदस्य होगा। उन्होंने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा की बात भी की, परंतु यह भी कहा कि हम बहुसंख्यक समाज की अग्रगति को रोकने का अधिकार अल्पसंख्यक समाज को नहीं दे सकते। यह एक महत्वपूर्ण घोषणा थी। इसमें प्रथम बार भारत के लिए 'स्वाधीनता' शब्द का व्यवहार किया गया। साथ ही साथ अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों के अधिकारों की सुरक्षा की बात की गयी।

24 मार्च, 1946 को मिशन दिल्ली पहुँचा। भारत आगमन के साथ ही कमीशन ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह भारत में विरोधी दावों का निर्णय करने के लिए नहीं, बल्कि भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण का उपाय खोजने के लिए आया है। मिशन का उद्देश्य था– भारतीय नेताओं से मिलकर भारत में पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को जल्दी संभव बनाना। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिशन ने भारतीय नेताओं से बातचीत शुरू कर दी। यह 17 अप्रैल तक चलती रही, लेकिन किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सका। अंत में मिशन द्वारा शिमला में त्रिदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन भी भारतीय समस्या का समाधान करने में असफल रहा। लीग किसी भी दशा में पाकिस्तान की मांग को छोड़ने को तैयार नहीं थी और कांग्रेस ऐसी किसी भी योजना को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी, जो पाकिस्तान की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती हो। अतः केबिनेट मिशन ने एक योजना प्रकाशित की गयी जो 'केबिनेट मिशन योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के मुख्य प्रावधान निम्न थे–

(1) भारत के भावी संविधान से सम्बद्ध प्रस्तावः

(a) ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों का एक संघ बने जिसके हाथों में विदेशी मामले, रक्षा और यातायात संबंधी अधिकार हों, परंतु इसके लिए आवश्यक धन जुटाने की क्षमता भी संघ में होनी चाहिए।

(b) संघीय विषयों के अतिरिक्त सभी विषय (अवशिष्ट विषय सहित) प्रांत के नियंत्रण में हों।

(c) देशी रियासतें, संघ को सौंपे गये विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर अपना अधिकार रखेंगी।

(d) प्रस्तावित संघ में कार्यकारिणी और विधायिका होगी, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे। विधान सभा में किसी सांप्रदायिक प्रश्न के फैसले के दौरान दोनों मुख्य संप्रदायों के विधायक अलग–अलग मतदान द्वारा उसका फैसला करेंगे।

(e) प्रांतों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया–प्रथम वर्ग– मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रांत, बिहार तथा उड़ीसा दूसरा वर्ग–पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत तीनों वर्गों के प्रांतों के प्रतिनिधियों को अपने–अपने वर्ग तथा प्रांत के लिए संविधान बनाने का अधिकार दिया गया। यदि कोई प्रांत वर्ग परिवर्तन चाहे तो नये संविधान के अन्तर्गत हुए निर्वाचनों के पश्चात् ही ऐसा कर सकता था। दस वर्षों के पश्चात् संविधान को पुनः संशोधित करने की बात कही गयी।

(2) संविधान निर्माण सभा–संविधान सभा में 389 सदस्य होंगे। इनमें 292 सदस्यों का चुनाव ब्रिटिश भारत प्रांतों की विधानसभाएं अप्रत्यक्ष तरीके से सांप्रदायिक आधार पर करेंगी। ब्रिटिश भारत के सदस्यों में 210 सामान्य (मुसलमान तथा सिखों को छोड़कर), 78 मुसलमान तथा 4 सिख थे। शेष 93 सीटों पर देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को चुनने का तरीका बाद में तय किया जानाथा।

(3) देशी रियासतें–संविधान के अस्तित्व में आते ही अंग्रेजी सर्वोच्चता समाप्त हो जायेगी। देशी रियासतों को अधिकार होगा कि वे संघ से संबंध स्थापित करें अथवा प्रांतों से।

(4) सत्ता हस्तांतरण–विधान सभाओं को ब्रिटेन के साथ शक्ति हस्तांतरण से उत्पन्न मामलों पर एक संधि करनी होगी।

(5) पाकिस्तान की मांग–पाकिस्तान की मांग को स्वीकार नहीं किया गया।

(6) अंतरिम सरकार–संविधान के निर्माण के पूर्व एक अंतरिम सरकार की स्थापना का भी सुझाव रखा गया, जिसे प्रमुख राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो। इसमे 40 प्रतिशत सीटें हिन्दुओं को तथा 40 प्रतिशत सीटें ही लीग द्वारा मनोनीत मुसलमानों को और 20 प्रतिशत स्थान सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, अनुसूचित जातियों आदि को मिलेगा। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि अगर कोई दल अंतरिम सरकार में शामिल नहीं होगा तब भी सरकार बनायी जायेगी।

इस योजना का मुख्य गुण यह था कि संविधान सभा लोकतंत्र वादी सिद्धान्त–जनसंख्या पर आधारित थी और पुराना गुरुत्व (Weightage) का सिद्धान्त समाप्त कर दिया गया था। कांग्रेस को खुश रखने के लिए जहां संगठित भारत की व्यवस्था थी, वहीं लीग और रियासतों की संतुष्टि के लिए केन्द्र को कमजोर रखा गया। अंतरिम सरकार में समस्त उत्तरदायित्व भारतीयों को सौंप दिया गया तथा संविधान सभा को पूर्ण स्वतंत्रता एवं अधिकार दिया गया। प्रांतों के गुट बनाने की व्यवस्था अव्यावहारिक एवं दोषपूर्ण थी। फिर भी मिशन ने देशवासियों के बीच एक नयी आशा 'स्वतंत्रता की प्राप्ति' का संचार किया। फलतः सभी दलों ने योजना को स्वीकार कर लिया।

प्रारंभ में तो कांग्रेस और लीग दोनों ने ही केबिनेट मिशन को स्वीकार कर लिया था, लेकिन अंतरिम सरकार बनाने की योजना को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। लीग ने जब कांग्रेस के बिना ही सरकार बनाने का दावा पेश किया तो वायसराय ने लीग के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। इससे जिन्ना काफी निराश हुए। दूसरी तरफ संविधान सभा के चुनावों में कांग्रेस ने 214 सामान्य स्थानों में 205 प्राप्त किये तथा लीग को 78 मुस्लिम स्थानों में से 73 स्थान मिले। अतः जिन्ना ने सोचा कि 296 सदस्यीय संविधान सभा में तो उसके पास केवल 73 सदस्य हैं जो कि 25 प्रतिशत से भी कम है। इसलिए 29 जून, 1946 को लीग ने शिष्टमंडल योजना को अस्वीकार कर दिया और पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए 'सीधी कार्रवाई' (Direct Action) करने की धमकी दी। इस बीच 8 अगस्त, 1946 को कांग्रेस ने अंतरिम सरकार बनाने की योजना स्वीकार कर ली। नेहरू ने जिन्ना को भी सरकार में सम्मिलित होने के लिए आग्रह किया पर वे अपनी जिद पर डटे रहे तथा 16 अगस्त को 'सीधी कार्रवाई

दिवस' निश्चित कर दिया। उस दिन कलकत्ता में, जो उस समय लीग सरकार के अधीन था, सैकड़ों की संख्या में हिन्दू लूटे और मारे गये और नगर विध्वंसकर दिया गया। इसके प्रतिकार में हिन्दू बहुसंख्यक प्रांत बिहार में मुसलमानों पर अत्याचार हुए। उसके प्रतिकार में पूर्वी बंगाल में नोआखली और तीन पड़ाह में हिन्दुओं पर अत्याचार हुए। फिर यूपी.और बम्बई में सांप्रदायिक दंगे हुए। बंगाल में प्रांत के बंटवारे के लिए हिन्दुओं ने आन्दोलन आरंभ किया। 24 अगस्त, 1946 को वायसराय ने अंतरिम सरकार के 14 मंत्रियों वाले मंत्रिमंडल की घोषणा कर दी। अंतरिम सरकार को 2 सितम्बर को कार्यभार संभालना था।

जवाहर लाल नेहरू को अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बनाया गया। बाद में वायसराय के सुझाव पर लीग ने भी अक्तूबर 1946 में सरकार में शामिल होना स्वीकार कर लिया। लीग का सरकार में शामिल होने का उद्देश्य स्वतंत्रता को निकट लाना नहीं था, बल्कि उसके उद्देश्य अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना, पाकिस्तान की मांग मंगवाना, सरकारी कार्यों में रूकावट डालना और देश की प्रगति को अवरुद्ध करना था। लीग यद्यपि अंतरिम सरकार में सम्मिलित हो गयी थी, फिर भी उसने संविधान सभा में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को दिल्ली में आरंभ हुई।

एटली की घोषणा (20 फरवरी, 1947)–

भारत की तत्कालीन स्थिति से चिंतित होकर ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी, 1947 को यह घोषणा की कि अंग्रेज जून 1948 के पूर्वसत्ता भारतीयों को सौंप देंगे। घोषणा में यह भी कहा गया कि अगर संविधान सभा उस तिथि तक कोई संविधान नहीं तैयार कर सकेगी तो अंग्रेजी सरकार यह निश्चित करेगी कि सत्ता किसे सौंपी जायेगी–किसी केन्द्रीय सरकार को या प्रांतीय सरकार को। सत्ता के हस्तांतरण के कार्य को पूरा करने के लिए लॉर्ड वैवेल की जगह लॉर्ड माउन्टबेटन को नये वायसराय के रूप में नियुक्त किया गया।

माउंटबेटन योजनाः एटली की घोषणा के पश्चात् यह निश्चित हो गया कि अब भारत को स्वतंत्रता मिलने ही वाली है। आजादी मिलने की संभावना जब साकार होने जा रही थी तो लोगों पर सांप्रदायिकता का जुनून सवार हो गया। बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए जिसमें लीग, हिन्दू महासभा और अकाली दल तीनों ने हिस्सा लिया। लाहौर में पाकिस्तान विरोधी प्रदर्शन हुआ। लाहौर, अमृतसर, तक्षशिला, रावलपिंडी, बिहार, बंगाल आदि जगहों में भीषण नर–संहार हुआ। सेना और पुलिस ने भी अप्रत्यक्ष रूप से दंगाइयों की मदद की। गांधी एक जगह से दूसरी जगह सांप्रदायिक एकता कायम करने के लिए घूमते रहे, लेकिन जनता पागल हो उठी थी। इसी वातावरण में 24 मार्च, 1947 को नये वायसराय ने अपना पदभार ग्रहण किया। उन्होंने शीघ्र ही जान लिया कि भारत का बंटवारा अवश्यंभावी है। 3 जून, 1947 को माउन्टबेटेन योजना प्रकाशित हुई, जिनमें निम्न प्रावधान थे–

(1) भारत का विभाजन भारतीय संघ और पाकिस्तान में कर दिया जाये।

(2) इन राज्यों की सीमा निश्चित करने के पूर्व पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत प्रदेश और असम के सिलहट जिले में जनमत संग्रह कराया जाये और सिन्ध विधान सभा में वोट द्वारा यह निश्चित किया जाये कि वे किसके साथ रहना चाहते हैं।

(3) बंगाल और पंजाब में हिन्दू तथा मुसलमान बहुसंख्यक जिलों के प्रांतीय विधानसभा के सदस्यों की अलग–अलग बैठक बुलायी जाये। उसमें से अगर कोई भी पक्ष प्रांत का विभाजन चाहेगा तो विभाजन कर दिया जायेगा।

(4) हिन्दुस्तान की संविधान सभा दो हिस्सो में बंट जायेगी, जो अपने–अपने लिए संविधान तैयार करेगी। दोनों राज्यों को डोमिनयन स्टेटस प्रदान किया जायेगा।

(5) देशी रियासतों को यह स्वतंत्रता होगी कि वे जिसके साथ चाहें, मिल जायें या अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनायें रखें।

लीग तथा कांग्रेस द्वारा इस योजना के स्वीकार किये जाने के बाद लॉर्ड माउन्टबेटन ने इसे तुरंत क्रियान्वित कर दिया। पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल ने पाकिस्तान में रहने का निर्णय किया। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत, सिन्ध, बलूचिस्तान और असम के सिलहट जिले ने भी यही फैसला किया। इन निश्चयों के फलस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत तथा पाकिस्तान के स्वतंत्र राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947: ब्रिटिश संसद ने 4 जुलाई, 1947 को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम प्रस्तावित किया, जो 18 जुलाई, 1947 को स्वीकृत हो गया। इस अधिनियम के मुख्य बिन्दु निम्न हैं–

दो अधिराज्यों की स्थापना; संविधान सभाओं को सत्ता सौंपना; दोनों के लिए अलग–अलग गवर्नर जनरल; भारत मंत्री के पद का अन्त; 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा शासन; देशी रियासतों पर सर्वोपरिता का अन्त।

इस प्रकार 14 अगस्त को पाकिस्तान का निर्माण हुआ और ठीक 12 बजे रात्रि को 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और लियाकत अली प्रधानमंत्री बने। भारत के गर्वनर जनरल लार्ड माउन्टबेटन और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू बने।

डॉ0 पुष्पेन्द्र कुमार मिश्र
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
डी0एन0 (पी0जी0) कॉलेज, गुलावठी
ईमेलः mishrapk83@gmail.com
दूरभाषः 7088426431

PK Mishra